Published by

M M. Lal, Daraganj, Allahabad.

---



---

*Printed by*
Bajrang Bahadur Srivastava at the Bajrang Press, Allahabad.

# अछूत

## एक सामाजिक नाटक

---

लेखक
अनेक पुस्तकों के रचयिता
आनन्दि प्रसाद श्रीवास्तव

---

प्रकाशक
मैनेजर, विश्व ग्रन्थावली
५०६ दारागंज इलाहाबाद ।

---

प्रथम संस्करण ] सं० १९८५ वि० [ मूल्य १)

में प्रत्येक प्रतिभाशाली हिन्दी लेखक का—चाहे वह कवि, नाटककार, गद्य लेखक, गल्प लेखक, उपन्यासकार, सम्पादक, संग्रहकर्ता आदि कोई भी हो—यह प्रधान कर्तव्य है कि वह अपनी अलौकिक शक्ति का उपयोग हिन्दी भाषा-भाषियों के अभ्युदय को दृष्टि में रखते हुये ही करे।

कहा जाता है कि उत्कृष्ट रचना तो अपने अन्त करण के सुख के लिये--'स्वान्त सुखाय'—ही की जाती है। किन्तु जब हृदय ही देश की दीन दशा के दुखड़े से लबालब भरा हो तो फिर 'स्वान्त सुख' का एक मात्र उपाय इस हृदय की आह को निकालना ही तो रह जायगा। यह भी कहा जाता है कि उपदेश से पूर्ण रचना नीरस हो जाती है। मेरा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि भद्दे ढग से सदा समय कुसमय उपदेश दिया जावे। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपनी मूक दृष्टि तथा कर्तव्य-परायणता-द्वारा पति के सन्मुख उच्च आदर्श उपस्थित करती है उसी प्रकार साहित्य के द्वारा उपदेश देना माना गया है—'कान्ता-सम्मिततयोपदेशयुजे'।

गद्य साहित्य की अभी बहुत कमी है। बीसवीं सदी के इस प्रथम पाद में खड़ी बोली की कविता पर तो तरह तरह के प्रयोग हुए और हो रहे हैं, किन्तु हिन्दी के नव-युवक लेखकमंडल का ध्यान गद्य पर प्रयोग करने की ओर अभी उतना नहीं गया है। पद्य में प्रयोग करना उतना कठिन नहीं है क्योंकि अगर कविता नहीं बन पाई तो तुकबन्दी तो बन ही जाती है—फिर अब तो 'तुकबन्दी' की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु गद्य के माध्यम-द्वारा अपने को अथवा जनता को बहलाना उतना सरल नहीं है। युवती यदि गुणवती न भी हो तो स्त्री तो है ही, किन्तु यदि पुरुष निर्गुणी हो तो उसे कौन पूछेगा। इस धारणा के कारण मैं सदा ही हिन्दी-प्रेमी मित्रों का ध्यान गद्य की ओर दिलाता रहता हूं।

मेरा एक पागलपन और रहा है और वह यह कि अपना देश जब तक इस दीनावस्था में है तब तक राष्ट्र की प्रत्येक शक्ति का उपयोग देश के उत्थान के ही लिए होना चाहिए। इन राष्ट्रीय शक्तियों में से साहित्य एक बहुत बड़ी शक्ति है। मेरी समझ में तो देश की वर्तमान स्थिति

में प्रत्येक प्रतिभाशाली हिन्दी लेखक का—चाहे वह कवि, नाटककार, गद्य लेखक, गल्प लेखक, उपन्यासकार, सम्पादक, संग्रहकर्ता आदि कोई भी हो—यह प्रधान कर्तव्य है कि वह अपनी अलौकिक शक्ति का उपयोग हिन्दी भाषा-भाषियों के अभ्युदय को दृष्टि में रखते हुये ही करे।

कहा जाता है कि उत्कृष्ट रचना तो अपने अन्तःकरण के सुख के लिये—'स्वान्त सुखाय'—ही की जाती है। किन्तु जब हृदय ही देश की दीन दशा के दुखड़े से लबालब भरा हो तो फिर 'स्वान्त सुख' का एक मात्र उपाय इस हृदय की आह को निकालना ही तो रह जायगा। यह भी कहा जाता है कि उपदेश से पूर्ण रचना नीरस हो जाती है। मेरा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि भद्दे ढग से सदा समय कुसमय उपदेश दिया जावे। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपनी मूक दृष्टि तथा कर्तव्य-परायणता-द्वारा पति के सन्मुख उच्च आदर्श उपस्थित करती है उसी प्रकार साहित्य के द्वारा उपदेश देना माना गया है—'कान्ता-सम्मिततयोपदेशयुजे'।

# परिचय

यह 'अछूत' नाटक उपयोगी गद्य लिखने की आवश्यकता के सबन्ध में एक बार के विचार-परिवर्तन का परवर्ती फल कहलाया जा सकता है। इस 'अछूत' से मेरा सम्बन्ध इसी नाते है। हिन्दी जनता को मैं इसका परिचय इन शब्दों में दे सकता हूँ कि यह रचना एक कवि का अपने देश के सैकड़ों नृशंस सामाजिक अत्याचारों में से एक का नाटक के रूप में दिग्दर्शन कराने का प्रथम प्रयास है। इस प्रयास में लेखक कहा तक सफल अथवा असफल हुआ है इसका सच्चा निर्णय तो सहृदय हिन्दी प्रेमी ही कर सकते हैं। मेरा इतना अनुरोध अवश्य है कि केवल छिद्रान्वेषण करके हिन्दी के एक होनहार मौलिक नाटककार को हतोत्साहित करना उचित न होगा क्यों कि मुझे तो इस कृति को देख कर साहित्य के इस अंग की पूर्ति के सम्बन्ध में लेखक से बड़ी बड़ी आशाएँ बँध गई हैं।

१८-१२-१९२८ धीरेन्द्र वर्म्मा।

दूसरी बात यह है कि जो बात मनुष्य अपने मन में कहता है वह नाटकों में दर्शकों के सुनने के लिये बडबडाने (soliloquy) के रूप में जोर से कहाई जाती हैं। यह ठीक है कि मनुष्य उन बातों को कभी कभी धीरे धीरे बडबडाने लगता है, पर इतनी जोर से कभी नहीं बडबडाता कि इतना जनसमुदाय उसे सुन सके। उसके अपने प्रति कथन को इतनी जोर से कहलाना कि उसे इतने अधिक मनुष्य सुन सकें, अत्यन्त अस्वाभाविक है। यही बात समझकर मैंने इस नाटक में कहीं भी ऐसा अवसर नहीं आने दिया कि अपने प्रति कथन की आवश्यकता पड़े।

तीसरी बात यह है कि यद्यपि यह नाटक मैंने नाटक-कम्पनियों के लिये लिखा है, तथापि उन कम्पनियों में खेले जानेवाले नाटकों का, बातचीत में तुकबन्दी का, प्रचलित दोष नहीं ग्रहण किया। यह दोष बडा भयानक है। इससे नाटक बहुत अस्वाभाविक हो जाता है। अभी तक इस दोष का हमारे रंगमञ्च पर रहना बडा ही लज्जाजनक है। नाटक-कम्पनियों को चाहिए कि वे इस कलंक को शीघ्र ही दूर कर दें, चाहे

उनकी आमदनी में कमी ही क्यों न हो जाय। जो विदेशी अब तक हमारे यहां बातचीत में तुकबन्दी सुनते होंगे वे अपने मन में सोचते होंगे कि भारतवर्ष इस विषय में अब भी हजार साल पीछे है।

चौथी बात यह है कि नाटका में कविता आदि का रखना भी अच्छा नहीं है। बातचीत तो कविता में होती ही नहीं, आजकल बातचीत में कविता का उद्धृत करना भी बुरा समझा जाता है। परन्तु शेरबाजी या कविताबाजी हमारे रंगमञ्च पर अभी तक प्रचलित है। इतना ही नहीं, हमारे नवयुवक विद्यार्थी भी जो नाटक खेलते हैं उनमें कविताएं रहती है, और वे उन्हें पसन्द भी करते हैं। पर यह अच्छी रुचि नहीं है। इसलिए मैंने इस नाटक में कविताएं नहीं रक्खी। केवल एक स्थान पर बहुत उपयुक्त समझ कर रहीम का एक दोहा रख दिया है।

यह मैं समझता हूं कि नाटक में गानो के लिए भी स्थान नहीं है। परन्तु बिना गानों का नाटक अभी हिन्दीभाषी भारतवर्ष में चल नहीं सकता। अतएव विवश होकर मुझे इस नाटक में गाने रखने पड़े। पर

जहां तक हो सका है मैने गानो के लिए अवसर उत्पन्न कर लिये हैं। (यदि कहीं एक आध स्थान में भूल से ऐसा गाना आगया हो जिसके लिए कोई अवसर न हो, तो मैं क्षमा चाहता हूँ)। जो जनता की रुचि मुझे बाध्य न करती तो मैं इस नाटक से गानो का भी बहिष्कार कर देता। इसमें के सब गाने अपने हैं, केवल एक 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' आदि मीराबाई का है।

अधिकांश में यह बात सत्य प्रतीत होती है कि हिन्दी के जो नाटक खेले जा सकते हैं वे सुरुचिपूर्ण नहीं हैं, और जो सुरुचिपूर्ण हैं वे खेले नहीं जा सकते। (यह बात अनुवादित नाटको के बारे में सत्य नहीं है।) वस्तुत खेलने योग्य सुरुचिपूर्ण नाटक लिखना कठिन है और उससे भी कठिन है ऐसा खेलने योग्य सुरुचिपूर्ण नाटक लिखना, जिसको जनता आदि से अन्त तक उत्सुकता के साथ देखे। मैंने इस नाटक में सुरुचि और खेलने की योग्यता दोनो के समावेश करने का प्रयत्न किया है और साथही यह ध्यान भी रक्खा है कि दर्शक एक दृश्य के बाद दूसरे के

लिए उत्सुक रहें। परन्तु इस प्रयत्न में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इस बात को सहृदय जनता ही समझ और कह सकेगी।

इस नाटक में मैंने अछूतों की भाषा ग्रामीण रक्खी है। भारतवर्ष में क्या, युक्तप्रान्त में ही ग्रामीण भाषा एक ही नहीं है, अनेक हैं। ऐसी अवस्था में मैं सिवाय इसके और क्या कर सकता था कि जिस ग्राम में (मैं) रहता हूँ उसकी, या जिसे गंगापारी बोली कहते हैं वह, भाषा अछूतों के मुख से बोलवाता। पहले मैंने अछूतों के मुख से साधारण खड़ीबोली बोलवाई थी, पर आख़िर यह बात मुझे ठीक नहीं जची। फल यह हुआ कि आदि से लेकर अन्त तक मैंने अछूतों की भाषा ग्रामीण कर दी। उनके मुख से कुछ ऐसी ही भाषा अच्छी मालूम होती है। यदि इस नाटक के खेलने में अन्य प्रान्त के, या इसी प्रान्त के गंगा पार से भिन्न स्थान के, लोगों को कठिनता हो तो वे मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि जिस भाषा को मैंने अछूतों के मुख से बोलवाया है उसे उनसे बोलवाने के लिये मैं विवश था। भारत भर के अछूतों की अभी

तक कोई एक भाषा नही है, और न कभी होने की सम्भावना है।

भिन्न ग्रामीण बोलीवाले स्थानों में यदि यह नाटक खेला जाय तो खेलनेवालों से प्रार्थना है कि वे इसमें की उन बातों को जो अछूतों के मुख से कहलाई गई हैं अपनी भाषा में परिवर्तित कर लें। मेरे इतना लिख देने पर भी जिन लोगों को इस नाटक में ग्राम्य-भाषा प्रयोग के कारण कही कही ग्रामीणता का दोष देख पड़े, उनसे मैं पहले ही से क्षमा-याचना किये लेता हूँ।

मैं यह नाटक लिखनेवाला नही था, परन्तु दो सज्जनो की प्रेरणा से मुझे इसे लिखना पड़ा। उनमें से एक तो हैं पण्डित निरञ्जननाथ शर्मा बी० ए०, जिन्हें मैं छोटे भाई के समान मानता हूँ और दूसरे हैं बाबू मनमोहन लाल वर्मा, बी० ए०, जो मेरे छोटे भाई हैं। इन दोनो ने कुछ लोगो के खेलने के लिए जबरदस्ती यह नाटक लिखवा लिया। वे मेरे धन्यवाद के पात्र तो हैं, पर मैं उन्हें धन्यवाद कैसे दूँ वे मेरे छोटे भाई हैं। उनके सम्बन्ध में मुझे यही कहना है कि यदि जनता ने इस

नाटक को पसन्द न किया, या यह अच्छा न हुआ तो दोष उनका है, मेरा नहीं, और यदि संयोग से यह अच्छा निकला और पसन्द किया गया तो फिर क्या पूछना है। उसकी अच्छाई के सारे श्रेय का भागी मैं हूं।

अन्त में मेरा निवेदन है कि यह तीन दिन की रचना और मेरा प्रथम नाटक है। इनमें त्रुटियों का रह जाना सर्वथा सम्भव है। यदि जनता ने मुझे उत्साह दिया तो मैं उसके सम्मुख चालिस पचास नाटकों के रखने का प्रयत्न करूंगा। उनमें से अधिकांश भारतीय समाज के सम्बन्ध के होंगे, पर कुछ उन समस्याओं पर भी होंगे जो आज कल संसार के सामने हैं।

प्रयाग
विजयादशमी सं० १९८५ | आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव्य

---

८ युवराज या राजकुमार—रजवाडे के अधिपति के पुत्र।

९ महन्त जी—शिवानन्द के पश्चात् गद्दी पानेवाले महन्त।

१० सुशीला—एक युवती, जो हरिकिरण उपाध्याय की लडकी प्रसिद्ध है।

११ सखी—सुशीला की बालसंगिनी।

## अप्रधान पात्र

१—महात्मा विश्वानन्द के कुछ चेले २—एक बुढ़िया और एक जवान स्त्री ३—एक अछूत और उसका प्यासा लडका ४—एक पुजारी और एक अछूत ५—दो गायक ६—एक मटँगू नाम का अछूत और उसकी स्त्री ७—डाक्टर ८—दयासागर का पिता ९—पुलिस इन्सपेक्टर १०—राजा के कुछ दर्बारी ११—प्रतिहार १२—एक गायक १३—रंगा नौकर १४—पंडित रामनारायण आचार्य १५—हरदयाल ओझा पुजारी १६—एक अछूत स्त्री १७—एक भयानक मनुष्य १८—कुछ अछूत और दो ब्राह्मण १९—एक अछूत किसान २०—दो सिपाही २१—तीन आदमी २२—दो पुलिस के सिपाही २३—एक साधु २४—कुछ मठ के पच २५—दर्बान २६—जल्लाद २७—कुछ नागरिक।

---

[ मुस्कराकर ] परन्तु महाराज, आप कहीं यह आज्ञा न दे दीजियेगा कि जो कुछ रूखी सूखी मैं माँग कर लाता हूँ वह भी उनको दे दूँ। अगर ऐसा होगा तो मैं ये मारे मर जाऊंगा।

महात्मा—[ हँसकर ] नहीं भाई, मैं तुम्हारी रूखी सूखी नहीं छीनूंगा। बहुत जरूरत पड़ने पर शायद ऐसा करना पड़े। अच्छा तो तुम घूम घूम कर इस नगर भर के अछूतों की खबरदारी लिया करो।

सदानन्द—जो आज्ञा महाराज की।

महात्मा—तुम बड़े ऊधमी हो। बहुत गड़बड़ न मचाना, शान्ति से अपना काम करना। बेटा, तुम्हारा उद्धतपन नहीं जाता। अच्छा, जवानी की अवस्था में यह चाहिए भी।

सदानन्द—महाराज, मैं क्या करूँ। मोज में आता हूँ तो कुछ ऊधम कर डालता हूँ। उसको आप क्षमा कर दिया कीजिए।

महात्मा—खैर, ईश्वर तुम्हारा मेरा कार्य सफल करे,

जान पडता है दोनों काम पूरे कर लोगे। इस राज्य के अछूतों को एक सेवक की आवश्यकता है, एक क्या सैकड़ों सेवकों की आवश्यकता है—

सदानन्द—[ बात काटकर ] गुरु जी, मुझे जो आज्ञा हो वह करने को तय्यार हूं। मैं तो पढने के सिवाय और काम भी चाहता हूँ, दिन भर घोटन्त विद्या से मेरा जी ऊब जाता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे पढने में किसी काम से किसी तरह की कमी न होगी।

महात्मा—देखो, इस देश में अछूतों की कैसी दुर्दशा है। उनको कितना दुख है। बिचारे समाज के नीच से नीच काम चुपचाप करते हैं, तिस पर भी लात-घूसा खाते हैं, भूखों मरते हैं, कोई उन्हें छूता तक नहीं। क्या तुम्हें कभी उनकी दशा पर दया नहीं आई है?

सदानन्द—आई क्यों नहीं है महाराज! मैं तो उनके दुख से सदा दुखी रहता हूं। इच्छा होती है कि उन की जितनी सेवा हो सके किया करूं, परन्तु अभी तक आपकी आज्ञा नहीं मिली, इससे कुछ न कर सका।

[ मुस्कराकर ] परन्तु महाराज, आप कहीं यह आज्ञा न दे दीजियेगा कि जो कुछ रूखी सूखी मैं माँग कर लाता हूँ वह भी उनको दे दूं। अगर ऐसा होगा तो मैं ये मारे मर जाऊंगा।

महात्मा—[ हँसकर ] नहीं भाई, मैं तुम्हारी रूखी सूखी नहीं छीनूंगा। बहुत जरूरत पड़ने पर शायद ऐसा करना पड़े। अच्छा तो तुम घूम घूम कर इस नगर भर के अछूतों की खबरदारी किया करो।

सदानन्द—जो आज्ञा महाराज की।

महात्मा—तुम बड़े ऊधमी हो। बहुत गड़बड़ न मचाना, शान्ति से अपना काम करना। बेटा, तुम्हारा उद्धतपन नहीं जाता। अच्छा, जवानी की अवस्था में यह चाहिए भी।

सदानन्द—महाराज, मैं क्या करूँ। मौज में आता हूँ तो कुछ ऊधम कर डालता हूँ। उसको आप क्षमा कर दिया कीजिए।

महात्मा—ख़ैर, ईश्वर तुम्हारा सेवा-कार्य सफल करे,

तुम्हारे उद्योग से इस देश में अछूतों पर जो अत्याचार होता है वह उठ जावे।

[ खँजड़ी आदि उठा लेते हैं ]

आओ, हम सब मिल कर गावें—

[ सब गाते हैं ]

जगत में, सब जन सदा समान,
मै हूँ बड़ा, और वह छोटा, यह झूठा अभिमान।
एक पिता के सभी सुवन हैं,
भाई भाई सारे जन हैं,
झूठे जाति-पाति-बन्धन हैं, यह है सच्चा ज्ञान।
सब को सम समझो था मन में,
खेला था जो ग्वालाजन में,
वही बसा है सब के तन में, रक्खो उसका मान।

सदानन्द—बोलो महात्मा विश्वानन्द की जय।

[ सब चेले बोलते हैं ]

---

## दृश्य—२

[ स्थान—राह—दो स्त्रियां, एक बूढी और एक जवान, भरा गगरा सिर पर लिये जा रही हैं—एक अछूत का प्रवेश—उसके साथ उसका बच्चा है जो बहुत प्यास से हाफ रहा है ]

अछूत—हे माई, मोर बच्चा बहुत पियासा है, तनी पानी पियाय देव।

बुढ़िया—कौन जात हो?

अछूत—माई, मैं मेहतर हौं।

बुढ़िया—भग यहां से, पानी पिलाऊँ इनको!

अछूत—नहीं माई—मोर माई तौ, मोर बच्चा प्यासन मरि जाई।

बुढ़िया—मर जायगा तो मैं क्या करूँ, हमारा पानी जो जूठा हो जायगा।

अछूत—माई, पानी कैसे जूठ होइ जाई, दूर से पियाय दिहौ।

बुढ़िया—[ बिगड़ कर ] अरे कमीने, तू इतना भी नहीं समझता कि पानी कैसे जूठा हो जायगा! अरे तुम

लोग तो ऐसे गन्दे होते हो कि नाली के पानी में हाथ धोकर समझ लेते हो कि अब हाथ साफ़ हो गया, तुम कैसे समझोगे कि पानी कैसे जूठा हो जायगा? इतना समझते तो मेहतर ही काहे को होते। जा भग यहां से, मुझको क्या पड़ी है कि तुझे बताऊं कि पानी कैसे जूठा हो जायगा। क्या तेरे बाप का कर्ज़ा खाया है जो समझाऊं?

अछूत—माई, तनी हमका बताय देव, पानी कसत जूठ होइ जाई, हम तोहार बडा गुन गाउब। हमार बच्चा तो मरतै अहै, तोहार गुन तो गाय लेई। ई देस के मनई सारेन ऐसे निर्दई अहै कि केउ क मरै जियै के खयाल नाही रखतैं।

बुढ़िया—चुप वे बदमाश, जीभ खिंचवालूगी जो ऐसी बात मुँह पर लावेगा। भंगी की इतनी हिम्मत कि हम लोगों को ऐसा कहे। तुझको छू नहीं सकती, नहीं तो जूतों से खबर लेती।

अछूत—महरानी! हमका जुतियाय जरूर लेव चहे तुमका नहाय का परै। जूता मारै के साथ तो गुस्सा जाई,

और हमारौ फायदा होइ जाई। पनीवा छुइ जाई तो तुम्हरे काम का न रहि जाई। हमारै लरिकवा ओका गटर गटर पिई।

जवान स्त्री—अम्मा, जरा सा पानी दे न दो। बेचारे की प्यास मिट जायगी और तुम्हारा कोई नुकसान न होगा।

बुढिया—तूभी शिपारिस करने लगी। ठहरी न आखिर मतिच्छन। अरे देख! जब हम पानी डालेंगी तो धार उसके हाथ पर पडेगी। वह धार घडे से लगी रहेगी, अलग तो हो न जायगी। उसी धार को वह जूठा करेगा, तो घडा जूठा हो गया कि नहीं। आज कल की लड़किया क्या समझें। [ बडे शान से चारो ओर देखती है ]

अछूत—धन्न याटो महरानी धन्न! धन्नी गिरै तोहरी खोपडी पर, तु वार के ग्वाल निकाल लिहौ। अरे अबहिन ईलाई होइ जाई तो तु हमका चार कोस दौर के पानी पियावौ। तनी टोप भर लगाय लेई, बस डर के मारे सुकुडदुम्म होइ जाव। जाव जाय, हमार बेटौना चाहे

मरिन जाय हम तोहरे पानी के भूखे नाहि न। जाव तुम्हार चरन छुई जाव।

[चरन छूने को हाथ आगे बढ़ाता है, बुढ़िया तिनगती है और पीछे हटती है]

जवान स्त्री—[बुढ़िया पर नाक भौं सिकोड़ती हुई] अम्मा, पानी दे दो, नहीं तो मैंही दिये देती हूं।

बुढ़िया—चल सीधे घर, बड़ी दयावन्ती बनी है, अगर पानी वानी दिया तो हड्डी तोड़े बिना न रहूंगी।

[सदानन्द का प्रवेश]

सदानन्द—क्या गोलमाल मचा रक्खा है?

अछूत—साधू बाबा, कुछौ नाहीं। ई बुढ़ीवा से विनती करत रह्यों कि मोरे बेटौना का चिल्लू भर पानी दै देव, तौ न जानै कितनी खोटी खरी सुनाइस—नास होय एकर।

सदानन्द—मा, पानी क्यों नहीं पिला देती।

बुढ़िया—महात्मा, हम गृहस्थ हैं, हम को जूठे मीठे का ख्याल रहता है। गगरे से लगी धार इसके हाथ पर पड़ेगी तो हमारा गगरा जूठा हो जायगा।

सदानन्द—मां, जो मक्खी इसके मुँह पर बैठती है वही तुम्हारे मुँह पर बैठती है। हवा इसके मुँह को छूती हुई तुम्हारे मुँह को छूती है। उसी धरती पर यह खड़ा है जिस पर तुम खड़ी हो। जूठ मीठ, छुआ छूत का विचार इतना न करना चाहिये। जो हवा उसके मुँह से निकलती है वह तुम्हारे नाक से होकर पेट में जाती है, तब क्या तुम्हारा पेट नहीं जूठा हो जाता ? किसी का जूठा खा लेने में उतना पाप नहीं होता जितना किसी का दिल दुखाने में होता है।

बुढिया—मैं अपना पानी देना नहीं चाहती। उससे इस भङ्गी का दिल दुखे तो मेरा क्या कुसूर है ? वह अपने मन से अपना दिल दुखाता है।

सदानन्द—तुमसे बहस करना व्यर्थ है। [आगे बढ कर गगरा छीन लेता है और अछूत के लड़के को पानी पिला देता है, फिर गगरा चमार से छुआ कर बुढिया के सामने फेंक देता है] जा हमारे ऊपर नालिश कर दे [बुढिया उसको कोसती हुई अपनी लड़की के साथ फिर कुवे की ओर लौटती है]

[सदानन्द गाता है]

दया धरम की जान है रे,
सब से बढ कर जग में नर के
भावों का सम्मान है रे।
ऊँच नीच के भेद-भाव का
बुरा तनिक भी भान है रे।
झुक जाने में पर के सम्मुख
सब से भारी मान है रे।

---

## दृश्य—२

[स्थान—मन्दिर का द्वार—एक पुजारी और एक अछूत]

अछूत—महराज, मोर गदेलवा बिमार रहा—मरै पर आयगवा रहा। तब मैं मानता मानेवँ रहा कि अपने हाथन से ठाकुर जी की पूजा करिहों। तान महराज, मोर गदेल चंगा होइगवा। अब महराज, मोका आपन मानता पूरी करै का है। मोका मन्दिर के भीतर जाय देव।

पुजारी—अरे कमीने, हट यहा से। चला है मन्दिर के भीतर जाने! कहीं भगो चमार मन्दिर के भीतर जा

सकते हैं ? मन्दिर भी अशुद्ध हो जायगा, ठाकुर जी भी अशुद्ध हो जायँगे।

अछूत—पुजारी, तोहरे पाव परित है हमका भीतर जाय देव। ठाकुर जी तो परम पवित्र अहैं, ऊ कैसे अशुद्ध होइ जैहैं। महराज तोहार बुद्धी मारी गै है का ? ठाकुर जी जब राम रहेन तबकै बात याद करो, गुह निषाद का छाती से लगाइन, शबरी के जूठ बैर खाइन रहा। तब नाहीं भये रहेन अशुद्ध, अब अशुद्ध होइ जैहैं। महराज, ईशुर आगिउ से गये बीते अहैं। आगिउ तो पवित्र मानी जात है। ओहमा चाहे जौन पड़ि जाय सब पवित्र, तो का ईशुर हमरे छुये से अशुद्ध होइ हैं ? कैसी बात करत हौ महराज ?

पुजारी—अबे भागता है यहा से कि बहस करता है ? तुझको मैं भीतर नहीं जाने दूगा।

अछूत—जो मैं पूजा न करिहौं, तो मोर गदेलवा फिर बिमार पड़ि जाई। मोका पूजा कर लेय देव।

[गाता है]

मोरे हैं भगवान,<br>
तोरे हैं भगवान,

केहि कर नहि भगवान ?
सब के हैं भगवान,
संकट काटैं मोर, पूजा करौं तोर,
नष्ट करैया पाप घोर, हे मोरे भगवान।

पुजारी—दुष्ट कहीं का, भागता है कि नहीं यहां से ? आया है ठाकुर जी की पूजा करने ! तेरा ही मुँह है ठाकुर जी की पूजा करने का।

अछूत—और नहीं तो महराज तोहारै मुँह है ? हमका भीतर जाय देव, हम ना मानब।

पुजारी—क्या बे कहता है "तोहारै मुँह है" मारे जूतों के सिर गञ्जा कर दूंगा, नहीं तो जा यहां से।

अछूत—महराज हम का कीन है तोहार जोन जूता मारै का कहत हो—कौन तोह का गरियावा है ? महाराज जबान सम्हार के काहे नहीं बोलतेव ?

[पुजारी क्रोधित होकर, जूता लेकर उसे पीटने लगता है—सदानन्द का प्रवेश]

सदानन्द—क्या है पुजारी, हां ! हां ! हाँ ! मत मारो बिचारे को।

पुजारी—मैं साले की हड्डी तोड़े बिना न रहूँगा।

[पुजारी दरवाजे के भीतर से लट्ठ ले आता है और मारना चाहता है—
सदानन्द लट्ठ पकड़ कर कहता है—"बस खबरदार"]

पुजारी—महाराज आप इस समय हट जाइये। इस साले ने मेरा बड़ा अपमान किया है।

सदानन्द—बस बस क्षमा कर दीजिये—

क्षमा बड़ेन को उचित है
छोटेन को उतपात,
कहु रहीम हरि का घटेउ
जो भृगु मारी लात।

पुजारी—आपका अपमान करता तो मालुम होता। धरे रहिये आप अपना दोहा। मैं इस साले का खोपड़ा फोड़े बिना न रहूँगा।

सदानन्द—बस पुजारी जी बस। अब हाथ उठाइयेगा तो अच्छा नहीं होगा।

पुजारी—तो क्या कर लोगे तुम—तुम्हारे ऐसे साधू हम ने बहुत देखे हैं। यह ताव किसी दूसरे को दिखाना।

सदानन्द—तुम क्यों उसे पूजा करने भीतर नहीं जाने देते ?

पुजारी—नहीं जाने देते जाव, तुम्हारे बाप का मन्दिर है?

सदानन्द—वह जायगा भीतर। आप से जो करते बने कर लीजिये।

पुजारी—न तुम जा सकते हो, न वह जा सकता है। बडा साधू बना है।

[सदानन्द एकाएक पुजारी को उठा कर पटक देता है]

सदानन्द—[पुजारी की छाती पर से] भय्या जाओ पूजा कर तो आओ।

[अछूत भीतर जाकर पूजा करता है]

अछूत [भीतर से]—महात्मा जी, मैं पूजा कर चुकेवँ —पुजरिवा का अब छोड देव। [बाहर आता है]

[सदानन्द लट्ठ उठा कर और अछूत को रोकर एक ओर चला जाता है]

## दृश्य—४

[स्थान—राजमहल का एक कक्ष—राजा और महात्मा विश्वानन्द]

राजा—गुरु महाराज, आप की कृपा से राज्य का सभी कार्य भली भांति चल रहा है। परन्तु एक बात की

मुझे चिन्ता है। कुछ दिन क्या सदा से ही अछूतों पर हिन्दू समाज का घोर अत्याचार चला आया है। यह अत्याचार न जाने कब तक चला जायगा। भारत का देश इतना विशाल है कि उससे किसी बात के दूर होने में बहुत समय लगता है। परन्तु यदि आप की कृपा हो तो इस छोटे रजवाड़े में जो अत्याचार अछूतों पर होता है वह दूर हो जाय।

महात्मा विश्वानन्द—साधु, राजन साधु। आपका मन्तव्य बहुत ही उत्तम है। उसे पूरा करना चाहिए। आप स्वयं ही अत्यन्त चतुर हैं, जो चाहें सो कर सकते हैं। मुझे तो आप ने यों ही बड़ाई दे रक्खी है। तो भी मैं तन और मन से आपकी और आपके राज्य की सेवा करने के लिये तय्यार हूं। कहिये क्या करना चाहिए?

राजा—महात्मन्, क्या करना चाहिये, यह तो आप को ही सोचना होगा। मैं तो आपका आज्ञाकारी दास मात्र हूं। मेरा विचार यही है कि यह रजवाड़ा अछूतों के साथ उचित व्यवहार करने में भारतवर्ष के और रजवाड़ों के लिये आदर्श हो जाय। आश्चर्य है कि भारतवर्ष के

राजाओं का ध्यान इस ओर नहीं जाता। वृटिश गवर्नमेंट विदेशी सरकार होते हुये भी अछूतों के ऊपर जो कृपादृष्टि रखती है वह भारतीय भारतीय होकर भी नहीं रखते।

महात्मा विश्वानन्द—राजन्, आपका ध्येय उत्तम है। इसके प्राप्त करने के लिये मैं पहिले से ही उद्योगशील हूं। समय समय पर आपकी सहायता की आवश्यकता होगी।

राजा—जब गुरूजी मेरे कहने के पहिले से ही मेरे ध्येय को प्राप्त करने में उद्योगशील हैं तो निश्चय ही मेरे सौभाग्यो का उदय हुआ है। अब मैं अपना कार्य सिद्ध ही समझता हूं।

[गायकों का प्रवेश]

गुरुजी, यदि इस समय कोई आवश्यक कार्य न हो तो कुछ संगीत का आनन्द लेते जाइये। आज दो बहुत ही प्रसिद्ध गायक आये हुये हैं।

महात्मा विश्वानन्द—जैसी आपकी इच्छा। संगीत से बढ़ कर और कौन वस्तु है!

राजा—[गायकों से] अच्छा, आप लोग कुछ सुनाइये।

[गायक साज सामान ठीक करते और गाते हैं]

( १ )

दीनन को दुख दूर करौ,
तिनही की सेवा से अपने मन में मोद भरौ!
उदर ज्वाल करि शान्त मलिनता उनके मुख की हरौ।
छोड़ सबै जग-जाल, हिये मँह सेवा-भावहि धरौ।
लेत अन्तरानन्द अनूठो भवसागर ह्वै तरौ।

( २ )

दीन में राम बसैं,
जो उनका अपमान करौ तुम मन में यही हँसैं!
बिना दीन सेवा के जप, तप, योग, यज्ञ बिनसैं।
दीन-दुख की प्रखर कसौटी पर प्रभु सबहिं कसैं।

राजा और महात्मा दोनों—

साधु, साधु।

---

## दृश्य—५

[ स्थान—राह—महात्मा विश्वानन्द और एक अछूत ]

महात्मा वि०—कहो भाई, किधर चले ?

अछूत—[ साष्टाङ्ग प्रणाम करके ] महराज आपै की कुटिया जात रह्यों । भगवान कै बडी किरपा भै कि आप रस्तै मा मिलि गयें ।

म० वि०—भाई, तुम्हारी क्या सेवा मुझसे हो सकती है ? कहो । जो मेरे शक्ति के भीतर है वह मैं करने को तय्यार हू ।

अछूत—महराज

म० वि०—भाई तुम्हारा नाम क्या है ?

अछूत—महँगू, महराज, मोरे तो प्रानन पर आय रही है। मैं और मोर घरवाली दुइनो भूखन मरत रहेन। महराज, दिन भर मजूरी करत रहित है और पाइत है कुछ आना। मँहगी के हाल का कही ! कौनों तना गुजर बसर नाहीं होत। तो मैं कहत रहेंव कि दुइयै प्रानिन के गुजर नहीं होत रही, अब एक तीसर और आय गवा।

मोरे एक गदेल भा है। महराज का मैं खांव, का घरवाली का खवावौं ? घरवाली का न खाय का मिली न ओके दूध होई। मैं कहा से दूध लइहौं कि बच्चवा का पियैहौं!

म० वि०—तो क्या चाहते हो ?

महँगू—यही तो पूछै आये हौं महराज कि का करौं ?

म० वि०—[ कुछ सोच कर ] अगर तुम्हारा बच्चा सुख से रहे तो क्या तुम उसको छोड सकते हो ?

महँगू—जस हुकुम होय महराज, आप के हुकुम से मैं सब कर सकत हौं। आप चहिहैं तो मोर लरिका राजा होइ जाई। आपके महिमा कौन नही जानत।

म० वि०—परन्तु फिर वह तुमको कभी नहीं मिलेगा। वह दूसरे का हो जायगा, तुमसे उससे कुछ मतलब नहीं रहेगा।

महँगू—महराज, अस नही होइ सकत कि ओह के खाय के परबन्ध होइ जाय और ऊ मोरे पासे रहै।

म० वि०—ऐसा कैसे हो सकता है ? तब तो उसे तुम्हें ही पालना पोसना पडेगा।

महँगू—महराज, कभौं कभौं लरिकवा पियार करै का न मिली?

म० वि०—कभी देखने को भी नहीं मिलेगा।

महँगू—हाय महराज, तब ई जियरा कसत मानी। चाहे हमार लरिका भूखन मरि जाय, हम वहिका इतना नाही छोड सकित कि कबहू देखबै न करी।

म० वि—भाई, कैसी बातें करते हो! लड़के को भूखों मार डालने से तुम्हें क्या लाभ होगा?

महँगू—महराज फिर कसत करी? जियरा बहुतै कलपी।

म० वि०—तुम अपने जी का सुख चाहते हो कि लडके का सुख?

महँगू—महराज दुइनौ का सुख।

म० वि०—जो दोनों को सुख न मिल सके तब?

महँगू—तब लरिका अपने पासै राखब।

म० वि०—लडके को अपने पास रक्खोगे! इसका क्या मतलब होगा? उसको भूख से तड़पते देखोगे, उसको चिथडा पहनते देखोगे, उसको दीन अवस्था में

सबकी गाली खाते देखोगे। जो कोई चाहेगा उस निर्बल पर लात घूँसा चलावेगा, उसको आधा पेट भोजन मिलेगा, कोई उसे छुएगा नहीं, तब तुम्हें अच्छा लगेगा।

महँगू—नहीं महराज, ई तो मोसे न देखा जाई।

म० वि०—क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा लड़का अच्छे अच्छे कपड़े पहने—पढ़े—बड़ा भारी विद्वान हो—मोटर पर चले—दुनियाँ में नाम करे। क्या तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता कि तुम्हारा लड़का रङ्क से राजा हो जाय?

महँगू—महराज, जो अइसन होइ जात तो फिर का पूछै का रहा।

म० वि०—ऐसा हो तो जायगा पर तब तुम्हारा लड़का तुम्हें कलेजे से चिपटाये रखने को नहीं मिल सकता।

महँगू—महराज यहै तो मुसकिल है।

म० वि०—भाई, तुम बड़े स्वार्थी हो।

महँगू—महाराज हम लरिकवा का प्रेम के मारे अपने पास रक्खा चाहित है कि स्वार्थ के मारे?

म० वि०—भाई, अगर तुम उससे प्रेम करते हो तो उसकी भलाई चाहो, भलाई चाहते हो तो उसके सुख को देखो—उसके सुख से सुखी होते रहो। वह तुम्हें देखने को न मिले तो इसी में सतोष करो कि तुम कभी कभी यह सुन लेते हो कि वह सुख में है। तुम तो उसे गले से लगाए रख के अपने मन को शान्त रखना चाहते हो, मगर यह नहीं जानते कि उसके दुखों को देख कर तुम्हारी छाती पर क्या वीतेगी।

मँहगू—महराज, मोर सोलहो आना भूल रही। मैं अनजान हौं, मोका छमा करौ। जौन आज्ञा होय मैं करै का तय्यार हौं।

म० वि०—अच्छा तो मेरी आज्ञा यही है कि तुम इस लड़के को टोकरी में रख कर नदी में बहा दो। हम ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि उसको कोई धनाढ्य मनुष्य गोद में ले ले। समझ गये।

महँगु—जौन हुकुम होय महराज। मैं तो आप से बात हार चुके हौं कि हुकुम पलिहौं। मैं लरिकवा

का बहाय देहौं—चाहे करेजवा टूक टूक होइ जाय।
समझ लेहो कि होवै नहीं भवा।

[ सदानन्द का प्रवेश ]

म० वि०—[ सदानन्द से ] बेटा इसके साथ जाओ।

[ कान में कुछ समझाते हैं ]

[ महँगू से ]

अच्छा भाई, दोपहर तक लडके को और देख लो, फिर जी कड़ा करके उसे बहा दो, ईश्वर तुम्हारा मगल करे। किसी से इस भेद को बताना नहीं।

महँगू—जौन आज्ञा होय महराज की।

---

## दृश्य—६

[ अछूत (महँगू) की झोपडी—महँगू उसकी स्त्री और सदानन्द ]

सदा०—महँगू, तुम रोओ मत। मैं बडा तैरने वाला हूँ। तुम्हारे लडके को चटपट नदी से निकाल कर महात्मा जी के पास पहुँचा दूँगा।

मँ० की स्त्री—मैं आपन बच्चा न देहैं।

सदा०—माता, तुम्हारा बच्चा राजा हो जावेगा। तुम किसी बात की चिन्ता न करो।

महगू—साधू महराज फुर तो कहत हैं, दै दे। बडी बच्चा वाली बनी है। घरवा में फूटी कउड़िउ नाहीं—बच्चा का पलवै पोसवै कैसे। इतना समझावा—बहन समझावत बीतगा नबौ समझ में न आवा।

[महँगू की स्त्री रोती है, महँगू भी रोने लगता है]

सदानन्द—देखो देखो यह खुशी का समय है। ऐसा मगल-कार्य रोकर नहीं करना चाहिए। दुनियां में कौन किसका है, सुनो, तुमको एक भजन सुनाता हू।

[गाता है]

जगत में कोई नहीं अपना,
माता पिता बहन भाई औ'
बेटा सब सपना।
पूर्व जन्म का वैर न ले जो
बेटा आज बना।
रहता है क्यों तू ऐ मूरख
फिर यों मोह-सना।

महँगू—महराज, मैं तय्यार अहो।

[ महँगू की स्त्री बच्चे को चिपटा रोती है, मगर महँगू उसे मुलाइमियत से छुड़ा कर सदानन्द के साथ जाता है ]

---

## दृश्य—७

[ महात्मा विश्वानन्द की कुटी—महात्मा विश्वानन्द कुछ चेलों के साथ आसन जमाये हुये बैठे हैं—एक व्यक्ति का प्रवेश ]

म० वि०—अच्छा, श्रीमान् गोकरण उपाध्याय जी ने कृपा कर ही दी। पधारिए, महाराज पधारिए—

गो० उ०—[ साष्टाङ्ग प्रणाम करके ] भला, गुरु महाराज, दास की यह मजाल कि आप याद करें और वह सेवा में उपस्थित न हो। महाराज की क्या आज्ञा है ?

म० वि०—बैठिये तो, सब कुशल तो है। साधुओं का काम बड़ा आवश्यक थोड़े होता है। हो जाय तो वाह वाह, न हो जाय तो वाह वाह।

गो० उ०—महाराज, आप महानुभावों का कार्य ही संसार में सब से आवश्यक कार्य है। आपके हर एक

कार्य में लोकहित छिपा रहता है। आपका कार्य सब से पहले होना चाहिये।

म० वि०—अच्छा, अच्छा, जरा दम तो लीजिये। आप के चेहरे से चिन्ता झलकती है। ऐसा मालूम होता है कि हृदय में कोई भारी आघात लगा है। क्या श्रीमती जी के देहान्त का शोक अभी तक चला आता है। आपको तो ऐसा समझना चाहिए कि उनका बड़ा सौभाग्य था जो वे आपके सम्मुख स्वर्ग चली गईं। मृत: को वा न जायते।

गो० उ०—आपका अनुमान ठीक ही होना चाहिए। मुझे चिन्ता भी है और जीवन-सगिनी के विछोह का दुख भी। आप इन दोनों के दूर करने में समर्थ हैं। चिन्ता कृपा से और दुख उपदेशों से। परन्तु आप पहले अपना कार्य कहिये, तब मैं अपनी चिन्ता और दुख के बारे में कहूंगा।

म० वि०—मेरा कार्य साधारण सा है परन्तु कदाचित उससे आप का मत-भेद हो। इस राज्य में आज कल बहुत से अछूत भूखो मर रहे हैं। राज कोप से उनके

लिए एक सहस्र मुद्रा की सहायता मिली है। वह हमारे अछूत-सेवा-संघ में जमा है। मेरी इच्छा हुई कि आप से भी कुछ सहायता की प्रार्थना करूं।

गो० उ०—महाराज, उन दीनों की सहायता से मेरा मत-भेद कदापि नहीं हो सकता, मैं तो केवल उन्हें छूता नहीं। मैं सब प्रकार से उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, परन्तु किसी को छूने या न छूने का व्यक्ति को अधिकार होना चाहिए। यदि हम किसी को नहीं छूते तो उसे बुरा न मानना चाहिए। मुझको कोई न छुए तो मैं बुरा न मानूगा।

म० वि०—महाराज, मैं आप से विवाद नहीं करूंगा। आप चतुर हैं, विद्वान हैं, जब आपको अछूतों को न छूना ही उचित जान पड़ता है तो मैं आप से उन्हें छूने की प्रार्थना कदापि न करूँगा।

गो० उ०—महात्मन्, प्रार्थना करने की बात क्या है, आप मुझे आज्ञा दे सकते हैं। आपकी आज्ञा से जो करूँगा उसका उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं आप पर होगा। मुझे क्या? यदि आप मुझे अछूतों के छूने की

आज्ञा दें तो मुझ में इतनी शक्ति कहां कि मैं उसका उल्लङ्घन करूं ?

म० त्रि०—धन्य है सज्जन। आप के उदार भावों को धन्य है। आप का मैं किस प्रकार अभिनन्दन करूँ !

गो० उ०—महाराज मैं आप के अछूत-सेवा-सघ के के लिये ५०० मुद्राएँ प्रदान करता हूँ।

म० वि०—मुझे आप से यही आशा थी। त्याग तो आप के जीवन का मूल मत्र जान पडता है। कृपा करके आप अपनी चिन्ता की बात कहिये। कदाचित् उसे कम करके मैं अपने को धन्य कर सकू।

गो० उ०—महाराज आप तो जानते ही हैं कि मैं सन्तान-हीन हूँ। यह दुख कुछ इतना कठिन है कि मैं इसे सहन नहीं कर सकता। अब मैंने सोचा है कि अपनी सतान से ही सुख हो सके, यह कोई बात नहीं है। किसी दूसरे की सन्तान को गोद लेकर भी काम चल सकता है। पर अपनी सन्तान मुझे देगा कौन ? धन के लालची दे सकते हैं। परन्तु मेरी मृत्यु के

पश्चात मेरे सम्बन्धियों को उनसे दुख पहुँच सकता है।

म० चि०—आपकी यह आशङ्का समुचित है।

गो० उ०—मैं कुछ ठीक नहीं कर सकता कि ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए। इस लिये आप की शरण आया हूँ। आप ही मेरी कठिनता को दूर कर सकते हैं।

म० चि०—सो कैसे?

गो० उ०—कोई ऐसा बालक बतलाइये जिसके माता पिता धन के लालची न हों और अपने बालक को सुख पूर्वक छोड सकें।

म० चि०—सुख पूर्वक छोड सकें? धन्य है आप के विचार को। आप किसी का बालक इस लिये और नहीं लेना चाहते कि उसके माता-पिता को दुख होगा, परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई अपने बच्चे को सुख-पूर्वक छोड दे।

गो० उ०—यदि सरल समस्या होती तो आप के सम्मुख लाई क्यों जाती?

[ सदानन्द का हाथ में टोकरी लिये प्रवेश ]

सदानन्द—महाराज, आज मैं स्नान करने गया था,

नहाते नहाते मुझे यह टोकरी बहती हुई दिखाई दी। मैंने इसे तैर कर पकड़ा तो क्या देखता हूँ कि इसमें एक सुन्दर बालक लेटा हुआ है।

[ बालक को विश्वानन्द के सामने रख देता है ]

गो० उ०—बड़ा सुन्दर बालक है। सुलक्षणों से संयुक्त है।

म० वि०—किसी गरीब ने जिसके पास खाने को न रहा होगा बहा दिया होगा। ऐसा सुन्दर और सुलक्षण बालक व्यभिचार का फल नहीं हो सकता।

गो० उ०—[ सजल नेत्र होकर ] जो ऐसा ही बालक मेरे होता।

म० वि०—सदानन्द, इसे कुटी में ले चलो, हवा लग जायगी। यह एक होनहार जीव है।

गो० उ०—[ एकाएक प्रसन्न होकर ] महात्मन् एक विनती है।

म० वि०—कहिये, कहिये।

गो० उ०—इसी बालक को गोद लेलू तो क्या हानि है?

म० वि०—यह विचार तो मेरी मन्द बुद्धि में उठा ही नहीं। सदानन्द, ओ सदानन्द, लड़के को एक कपड़ा ओढ़ा कर यहां ले आओ।

[सदानन्द बालक लाता है]

गो० उ०—स्वयं भगवान ने बात सुलझाई है।

म० वि०—चलो आप का मनोरथ पूर्ण हुआ।

[गो० उ० बालक को देखते हैं, चूमते हैं और ले जाते हैं]

---

## दृश्य—८

[स्थान—मठ—महात्मा विश्वानन्द, मठ के महन्त और सदानन्द]

महन्त—महात्मन्, आप आनन्द से हैं। ईश्वर भजन करते हैं और जन-सेवा। मैं तो कहीं का न रहा। मठ का महन्त होना एक बड़ी गृहस्थी का काम सिर पर लेना है। इसमें विचित्र विचित्र साधु हैं। सब का चरित्र विचित्र है। कोई सहायक नहीं है।

महात्मा विश्वानन्द—क्या आपको सहायक चाहिए?

महन्त—बड़ी कृपा हो यदि आप एक दे दीजिए।

म० वि०—स्वामी शिवानन्द जी, आप और हम गुरु भाई ठहरे। आप से मैं किसी प्रकार बाहर नहीं। आप मेरे जिस चेले को चाहिए सहायतार्थ ले लीजिए।

स्व० शि०—[ सदानन्द की ओर इशारा करके ] तो इन्हें दे दीजिए।

म० वि०—अच्छा आप इन्हें ही ले लीजिए।

स्व० शि०—अनेक धन्यवाद। आपका दिया हुआ मनुष्य सदैव श्रेष्ठ निकलता है। आपने श्रीमान् गोकरण उपाध्याय को बीस वर्ष पहिले जो बालक गोद लेने को दिया था उसकी सज्जनता की कथाएं राज्य भर में फैली हुई हैं उसकी प्रतिभा, विद्या, बुद्धि और सेवा-भाव की कहां तक प्रशंसा की जाय ? आपके हाथ में यश है यश। कोई आदमी आपके साथ एक दिन भी रहले तो वह सुधर गया। और एक मैं हूं। इतने दिन से इस मठ में रहता हूं, पर एक भी साधु पर प्रभाव नहीं जमा सकता। हमारे बाद जो महन्त होने वाले हैं उनका चरित्र अभी से दूषित है। आगे क्या होगा, भगवान जाने।

म० वि०—स्वामी जी आप क्यों व्यर्थ अपने को दोष लगाते हैं। आपके स्थान पर मैं होता तो मैं उससे कम काम कर सकता जितना आप कर रहे हैं। मेरे साथी मेरे चुने हुए हैं और आपके साथी बलपूर्वक आपके गले बांधे गये हैं। मैं भी तो अछूत-सेवा के कार्य में पचीस वर्षों से लगा हुआ हूं। अभी तक मैंने ही क्या कर लिया ?

स्व० शि०—महात्मन्, आपका कार्य विचित्र है। आप ने अब तक मुझ से ही नहीं कहा कि इस मठ में कुछ अछूत चेले रख लिये जावें।

म० वि०—महात्मन्, मैं यह नहीं चाहता कि मैं अछूतों का उद्धार करूं। मैं तो चाहता हूं कि मेरी अल्प सहायता से वे स्वयं अपना उद्धार करें। उनमें धीरे धीरे जागृति पैदा कर रहा हूं। जब वे जग जायेंगे तब स्वयं अपना उद्धार कर लेंगे।

स्व० शि०—आप की नीति सर्वथा प्रशंसनीय है। बिना श्रम के पाये हुए अधिकारों को मनुष्य बनाये नहीं रख सकता।

म० वि०—अच्छा तो बेटा सदानन्द, तुम महात्मा शिवानन्द की सेवा में रहो। मैं जाता हूं।

## दृश्य—९

[स्थान—महात्मा विश्वानन्द की कुटी—एक व्यक्ति का प्रवेश]

म० वि०—कहो बेटा हरिकरण उपाध्याय, तुम्हारे पिता श्रीमान गोकरण उपध्याय की अन्तिम क्रिया भली भाँति समाप्त होगई न।

हरि० उ०—आप की दया से सब कुछ सकुशल समाप्त हो गया। एक विशेष बात हो गई है। एक अछूत का लडका मेरी मोटर के नीचे कुछ दब गया है उसे अस्पताल भेज कर इधर आ रहा हूं। आप भी अस्पताल चलिये।

[दोनों का प्रस्थान]

## द्रश्य—१०

[स्थान—अस्पताल—डाक्टर, एक मोटर के नीचे आया हुआ लडका कुछ आदमी, हरिकरण उपाध्याय और महात्मा विश्वानन्द का प्रवेश

हरि० उ०—डाक्टर साहब क्या हाल है ?

डाक्टर—थोडी देर में बता सकूगा कि बचेगा या नही।

म० वि०—[ लड़के को देख कर ] बच तो जायगा।

डा०—अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। [ अपने काम में लग जाता है, घाव पर मरहम पट्टी करता है ]

[ लड़के के बाप का प्रवेश ]

ल० का बा०—हाय! मैं मर गयेंव—मोर जियरा! मोर करेजवा!

हरि० उ०—[ सजल नेत्र होकर ] भाई रोओ मत ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा लडका अच्छा हो जायगा।

ल० का बा०—तोहरे मुँह मा घिउ शक्कर, महराज, तू महात्मा अहा, तोहार कहा फुर होय! मोका मोर करेजवा तनी देखाय तो देव।

हरि० उ०—आओ देखो।

डाक्टर—लड़के पर का कपड़ा अभी नही हट सकता। पीड़ा होगी।

ल० का बा०—हाय बापरे। देखिउ न पैहौ।

हरि० उ०—भय्या घबराओ नहीं। किसी तरह धीरज धरो।

[पुलिस का प्रवेश]

पु० इन्स्पेक्टर—मोटर कौन हाँकता था ?

ड्राइवर—[आगे बढ़ कर] मैं हाँकता था।

हरि० उ०—[इन्स्पेक्टर को पास बुला कर] नहीं साहब मैं हाँकता था।

पु० इ०—माफ़ कीजियेगा—आपको हमें हिरासत में लेना होगा, नहीं, नहीं, जमानत हो जायगी, आप घबराएँ नहीं। आपका बड़प्पन, आपकी सज्जनता आदि को देख कर मुझे दुख है कि मैं ऐसा कह रहा हूँ। मगर मैं लाचार हूँ।

हरि० उ०—आप को अपना कर्त्तव्य करना ही चाहिये।

ज० का बा०—निसपिट्टर साहेब, हमरी भूल से लड़िकवा मोटर के नीचे आय गवा रहा। यह भी हमार दोष है।

[सब कोई चकरा कर उसकी ओर देखते हैं]

आप देवता का दोस न लगावैं, अस न कहैं। हमरिन सेवा मां थेचरऊ कहू जात रहे होइहैं।

पु० इ०—अच्छा तो अपना इजहार लिखा दो, मामला ख़तम। [ इजहार लिखता है ]

डाक्टर—लडके की हालत बडी खराब है।

म० वि०—( घबड़ाए हुये ) शायद नहीं बचेगा।

ल० का बा०—अरे बाप, मेरे लाल का कौनौ बचाय लेव। [ रोता है ]

[ सदानन्द का प्रवेश—लडके का बाप उनका पैर पकड कर और रोने लगता है ]

सदानन्द—धीरज धरो—भजन सुनो, सजन।

कौन ठिकाना नर-जीवन का,
विश्व-भँवर में पडा हुआ वहतो है यक तिनका।
सागर की बूँदें हैं लगता पता नहीं जिनका।
करलो कुछ, मत करो भरोसा कभी किसी छिनका।

( पहला अङ्क समाप्त )

---

# द्वितीय अंक

## दृश्य—१

[स्थान—महात्मा विश्वानन्द की कुटी—उनके कुछ शिष्य, सदानन्द का प्रवेश—आकर गाने लगता है]

देखो दिनका फेर,
रङ्क बना जो आज घूमता
कल था वही कुबेर।

जो समर्थ है दीन वही था
यह कैसा अन्धेर !
क्या से क्या करती हैं हमको
ये घटनाएँ घेर !

एक शिष्य—अरे भाई, तुमतो आये और लगे गाने, जरा कुछ दुनिया का हाल चाल तो बताओ।

सदानन्द—तुम्हारी दुनिया तो है लघु सिद्धान्त कौमुदी—रटो इकोऽयणच।

वही शिष्य—लघु सिद्धान्त कौमुदी क्या ऐसी वैसी किताब है। तुम तो जन्म भर उसका मतलब न समझोगे।

सदानन्द—अजी मुझसे पूछो भर। मैं तो एक एक सूत्र का दस दस अर्थ समझाऊं।

वही शिष्य—अच्छा तो इकोऽयणच का पहला मतलब बताओ।

[ सदानन्द उस शिष्य को उठा कर पटक देता है, एक घूसा देता है और कहता है ]

मतलब नं० १, समझा कि नहीं ? कहो कि समझा।

वही शिष्य—मर गया रे ! मर गया !

सदानन्द—चुप—कहो कि समझा।

वही शिष्य—हां समझा समझा।

सदानन्द—[ दूसरा घूँसा देता है और कहता है ] मतलब नं० २

वही शिष्य—अरे भाई जान न लो, मैं दस के बदले पन्द्रह मतलब समझ गया।

सदानन्द—एक बात और कबूलो तब छोड़ूंगा।

वही शिष्य—कौन बात ?

सदानन्द—यही कि जब तुम लोग शास्त्रार्थ में लड़ते हो तो जो बली होता है वह इसी तरह से मतलब समझाता है।

वही शिष्य—हां, हां, बिलकुल इसी तरह।

[ सदानन्द छोड़ देता है ]

दूसरा शिष्य—भाई यह तो बताओ कि वह अछूत का लड़का जो हरिकरण उपाध्याय के मोटर के नीचे आ

गया था और फिर वच गया था और फिर इनके द्वारा पढ़ाया लिखाया गया था • •"

सदानन्द—और फिर—और फिर—रहे पूरे पोंगा—बोलना भी नहीं आता।

शिष्य न० २—वह कानून की अन्तिम परीक्षा पास कर के लौट आया था नहीं ?

सदानन्द—अफीम घोले पड़े रहते हो क्या यार ? उसने यहां आकर वकालत भी शुरू कर दी। उसके कानून के ज्ञान की चारों तरफ धूम है।

शिष्य न० २—अच्छा, अछूत का यह हाल !

सदानन्द—नहीं तो क्या तुम्हारी तरह। जन्म से सिद्धान्त घोटते आये, पर पूछा जाय तो एक भी श्लोक का मतलब न बने।

शिष्य न० २—हां, सिद्धान्त में सब श्लोक ही श्लोक तो हैं।

सदानन्द—अरे न श्लोक सही, सूत्र सही, मगर तू हमारी गलती काटता है, हम से छोटा होकर—[तमाचा मार कर] कह कि सिद्धान्त में श्लोक ही श्लोक हैं।

शिष्य नं० २—अरे बाबा—अच्छा सिद्धान्त में श्लोक ही श्लोक हैं।

शिष्य न० ३—और सुना है कि हरिकरण उपाध्याय की लड़की उससे प्रेम करती है।

सदानन्द—तो क्या हानि है। वह लड़की उसके साथ साथ खेली, बड़ी हुई, अब प्रेम होगया ते। क्या नई बात हो गई। ऐसा तो दुनिया में हुआ ही करता है।

शिष्य न ३—बड़ी खराब लड़की है। अछूत के लड़के पर क्यो मुग्ध हुई।

सदानन्द—और नहीं ते। तुम पर मुग्ध होती ? जो देख पाती एक बार तो हो ही जाती। ये सिलीपर के तरह चपटे गाल, ये बिज्जू की सी आँखे, यह घुटी हुई चाँद देख कर कौन न मुग्ध हो जायगा। जाव तुम एक दफ़े उसको अपना दर्शन भर दे दो। तुम पर नहीं तो तुम्हारी चाँद पर मर जायगी और दो चार थप्पड़ लगा देगी।

शिष्य न० ४—यह साधुओं का झुंड है या बदमाशो की जमात। क्या बक बक कर रहे हो यहा ?

[महात्मा विश्वानन्द का प्रवेश—सब एकदम चुप होकर अदब से खड़े हो जाते हैं]

म० वि०—कहो सदानन्द, तुम्हारे मठ का क्या हाल चाल है, तुम्हारे नये महन्त के दुराचारों से मठवाले ऊबे या नहीं ?

सदानन्द—गुरु जी ! मठवालों को तो वह सर किये हुए है, और मैं उसकी खूब चापलूसी करता हूं। चापलूसी कर कर के उसके अन्तरंग बनने की आज्ञा ही तो आपने दी थी। नहीं तो अब तक मैं उसे पीट चुका होता।

म० वि०—अभी पीटो कूटो मत। समय आने पर देखा जायगा।

सदानन्द—अच्छा तो मैं मठ चलूं। उसके दुराचारों को देख कर बड़ा मजा आता है। कहीं मेरी गैरहाज़िरी में वह कोई दुराचार न कर बैठे। देख न पाऊंगा।

म० वि०—[मुस्कुरा कर] जाओ।

[सदानन्द का प्रस्थान]

[महात्मा विश्वानन्द जाते हैं]

है कैसा ससार,
अति विचित्र है, अति अगम्य है
दुख-सुख-पारावार।
पुरुषार्थी का अभिनन्दन है,
निश्चेष्टों का यह क्रन्दन है,
घटनाओं का बीहड घन है,
माया का व्यापार।
सभय जनो का भीषण भय है,
निर्भय जन को कौतुकमय है,
सार-सहित निस्सार।
किसी शक्ति का एक खेल है,
छायाओं का क्षणिक मेल है,
सब का कारागार।

[ हरिकरण उपाध्याय का प्रवेश और साष्टाग प्रणाम ]

म० वि०—आइये श्रीमान् उपाध्याय जी।

हरि० उ०—महाराज, आपके मुख से ऐसा सम्बोधन सुन कर मुझे भग जाने की इच्छा होती है। आप तो

केवल हरिकरण कहा कीजिये। वात्सल्य-रसकी अनायास सृष्टि में आप बाधक क्यों बनते हैं?

म० वि०—कहो, सब कुशल तो है।

हरि० उ०—सब गुरु महाराज की कृपा है। एक प्रार्थना करने आया हूं।

म० वि०—कहो।

हरि० उ०—वह अछूत का लड़का अब पढ़ लिख कर योग्य हुआ है। उसकी वकालत खूब चलने लगी है। मैं समझता हूं कि मैं उसकी पूरी सेवा अभी नहीं कर सका हूं। मेरे कारण उसकी जान जाते जाते बची। इससे अभी उसका ऋण मेरे ऊपर है।

म० वि०—मालूम होता है कि आपके ऊपर दुनिया भर का ऋण है। तभी तो आप सब की सेवा दिन रात किया करते हैं।

हरि० उ०—[ सकुचित होकर ] यह कुछ नहीं, मैं क्या करता हूं, सब करने वाले भगवान हैं—और उनके स्वरूप मेरे लिये आप हैं—आपही की शिक्षा-दीक्षा का

फल है कि मैं बुरी राह पर नहीं गया। इसका श्रेय आपको है मुझे नहीं।

म० वि०—हां तो उस अछूत के लड़के—क्या नाम है—दयासागर—उसके लिये तुम और क्या करना चाहते हो?

हरि० उ०—अभी अभी इस राज्य के प्रधान न्यायाधीश का स्वर्गवास हो गया है। मेरी सम्मति में उस पद के लिये इस राज्य में इस समय सब से योग्य व्यक्ति दयासागर है।

म० वि०—कैसे मालूम।

हरि० उ०—यहाँ के वकीलों में उसके टक्कर का इस समय कोई नहीं है। इस राज्य के सब से बड़े वकील भी उस से मुकदमे हार जाते है, इतनाही नहीं वे उसकी योग्यता के क़ायल हैं। दूसरी बात यह है कि वह कभी कोई झूठा मुकदमा नहीं लेता है। मैंने विश्वस्त सूत्र से पता पाया है कि एक झूठा मुकदमा लेने के लिये किसी ने उसे २० हजार मुद्राओं का प्रलोभन दिया था, परन्तु उसने दृढता पूर्वक नाहीं करदी। यह लड़का अछूत-

कुल-रत्न निकला है। न जाने कितने ऐसे अछूत लड़के पैदा होते होंगे और कुपरिस्थिति के कराल गाल में पड़ कर बिना अपना चमत्कार दिखाए ही चल बसते होंगे।

म० वि०—यह तो हुई है। आप उसे अब छूने लगे कि नहीं?

हरि० उ०—अगर उसे छुऊं तो घर भर मेरा छुआ पानी न पिये। बड़ी कठिनाई है। तो उसके न्यायाधीश के पद के लिये सर्कार में आवेदन पत्र दिलवा दिया जाय।

म० वि०—अवश्य।

हरि० उ०—मैं यह समझू कि आप उसकी सहायता करेंगे।

म० वि०—यदि आप की इच्छा है तो ऐसा ही सही।

हरि० उ०—एक बात और है जो गोपनीय है। परन्तु आप से सलाह न लूँ, यह भी नहीं हो सकता।

म० वि०—[चेलों से] यहां से जाओ। [हरि० उ० से] कहिये, मैं आप की कठिनाई सुलझाने में यथाशक्ति सहायता करूंगा।

फल है कि मैं बुरी राह पर नहीं गया। इसका श्रेय आपको है मुझे नहीं।

म० वि०—हां तो उस अछूत के लडके—क्या नाम है—दयासागर—उसके लिये तुम और क्या करना चाहते हो ?

हरि० उ०—अभी अभी इस राज्य के प्रधान न्यायाधीश का स्वर्गवास हो गया है। मेरी सम्मति में उस पद के लिये इस राज्य में इस समय सब से योग्य व्यक्ति दयासागर है।

म० वि०—कैसे मालूम।

हरि० उ०—यहाँ के वकीलो में उसके टकर का इस समय कोई नहीं है। इस राज्य के सब से बडे वकील भी उस से मुकद्मे हार जाते हैं, इतनाही नहीं वे उसकी योग्यता के कायल हैं। दूसरी बात यह है कि वह कभी कोई झूठा मुकद्मा नहीं लेता है। मैंने विश्वस्त सूत्र से पता पाया है कि एक झूठा मुकदमा लेने के लिये किसी ने उसे २० हजार मुद्राओं का प्रलोभन दिया था, परन्तु उसने दृढ़ता पूर्वक नाहीं करदी। यह लड़का अछूत-

## दृश्य—२

[ स्थान—राज दर्बार—राजा, युवराज, राजगुरु के आसन पर महात्मा विश्वानन्द, दर्बारी, महन्त, ब्राह्मण, मुख्य पुजारी इत्यादि ]

महाराज—परम पूज्य गुरु महाराज, विद्वान ब्राह्मण-वृन्द, महन्त समूह, पुजारी समुदाय और जनता के प्रतिनिधियो, आज मुझे आप से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर परामर्श करना है। मुझे पूरी आशा है कि पक्षपात का भाव हृदय से दूर कर, आप उस विषय पर पूर्ण उदारता से विचार करेंगे और अपनी बहुमूल्य सम्मतियों से मेरी सहायता करेंगे। इस दर्बार के हरएक महत्त्वपूर्ण कार्य में मैंने आप लोगों की सम्मति ली है, मेरा यह भाव सदैव ही रहा है कि राज्य का हर एक कार्य आप लोगों की सम्मति से हो, अतएव मैं इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को भी आप ही के सम्मुख उपस्थित करता हूं।

आप लोगों को ज्ञात होगा कि हमारे राज्य के इसी मुख्य नगर में एक प्रसिद्ध कानून जाननेवाले श्रीमान दयासागर

हरि० उ०—[ दबी जबान से ] मालूम होता है कि मेरी कन्या को दयासागर से प्रेम है।

म० वि०—तो उसका मन उससे हटाने का प्रयत्न करना चाहिये।

हरि० उ०—न्याय की दृष्टि से यह उचित तो नहीं है। परन्तु समाज की दशा देखते हुए यही करना पड़ेगा।

म० वि०—उदारता की हद हो गई। ख़ैर मैं समझ-लूँगा, आसक्ति और प्रेम में अन्तर है।

[ साष्टाग प्रणाम के बाद हरि० उ० का प्रस्थान ]

[ महात्मा विश्वानन्द गाते हैं ]

क्या जाने तुम क्या करते हो ?
किसका मन किसके द्वारा तुम किस विधि से हरते हो।
किसका मुकुट किस तरह लेकर किसके सिर धरते हो।
कभी कभी बन कर पत्थर तुम पानी पर तरते हो।
किस को क्या प्रदान करते हो, किसका क्या हरते हो।

जानना एक बात है और न्याय करना दूसरी बात है। कानून जानने से किसी के हृदय की पैत्रिक सकीर्णता कम नहीं हो सकती। जो जाति से ओछा है—जिसके नस नस में नीच जाति का रक्त प्रवाहित हो रहा है क्या वह कभी न्याय कर सकता है ? न्यायाधीश के लिये जिस उदार हृदय की आवश्यकता है वह उस में कहाँ से आवेगा !

बहुत से दर्बारी—बहुत ठीक ! बहुत ठीक !!

वृद्ध दर्बारी—महाराज, पहला दोष तो उसने यह किया कि अपना पैत्रिक व्यवसाय छोड कर कानून पढ़ा। समाज ने व्यक्तियों की प्रकृति और योग्यता के अनुसार मनुष्यों का विभाग करके, जिस विभाग के हाथ जो काम सौंप दिया था उसे छोडने का उसे कोई अधिकार नहीं था। यदि सब चमार चर्मकारत्व त्याग कर कानून पढ़ने लगेंगे तो समाज में एक कार्य का सर्वथा अभाव हो जायगा। चाहे एक विशेष चमार में किसी दूसरे प्रकार की प्रकृति या योग्यता हो—चाहे वह किसी एक शास्त्र में बडा पडित ही क्यों न हो सकता हो, पर उसके लिये

जी हैं। मुझे विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात होता है कि इस समय राज्य भर में सब से बड़े वकील यही हैं। उन्होंने कल हमारे दर्बार में प्रार्थना पत्र भेजा है कि राज्य के प्रधान न्यायाधीश का पद जो हाल ही में ख़ाली हुआ है उन्हें दिया जाय। इस विषय में अपनी सम्मति बताने के पहले मैं आप लोगों की सम्मति जानना चाहता हूं।

ब्राह्मण दर्बारी—उसकी जाति।

महाराज—चमार।

पुजारी दर्बारी—तबतो न्यायालय से लौट कर नहाने की आवश्यकता होगी।

[सब हँसते हैं]

महन्त दर्बारी—एक अछूत की यह हिम्मत।

वृद्ध दर्बारी—क्या कोई दूसरा आदमी इस पद के योग्य नहीं है।

ब्राह्मण दर्बारी—महाराज—इस नियुक्ति में हमको घोर आपत्ति है। जिसके जाति का काम था जूते बनाना उसने किसी प्रकार कानून में योग्यता प्राप्त कर के इस महा सम्मान्य पद के लिये प्रार्थना पत्र भेजा है। कानून

रहते हैं, जो जूता उतारते हुए अवनत शिर पर जूते का प्रहार करना अपना धर्म समझते हैं। हमारे परम विज्ञ मित्र ने कहा कि शूद्रों में उदारता नहीं आ सकती। मैं पूछता हूँ कि कितने ब्राह्मणों ने अपने जन्म भर में भी उतना दान किया है जितना दयासागर महोदय प्रति दिन करते हैं?

[ सन्नाटा छा जाता है ]

जो हृदय कभी दुखी रह चुका है वही दूसरे का दुख समझ सकता है। जिसकी हजारों पीढ़ियां दुखी रहती आई हों, जिसकी नस नस में दुखी पूर्वजों का रक्त बह रहा हो वह दूसरों का दुख अधिक समझेगा, दूसरों के—सभी प्रकार के मनुष्यों के—भावों को अधिक समझ सकेगा, उन भावों के कारणों का ठीक अनुमान कर सकेगा या वह मनुष्य जिसके पैर में बिवाई भी न फटी हो, जो सदा सुख का, यश का, और मदोन्मत जीवन व्यतीत करता रहा हो।

महाराज—और कोई दरबारी महोदय कुछ कहने की इच्छा रखते हैं?

यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि सब चमार उसी शास्त्र का अध्ययन करें। जब जाति भर के लिए यह नियम नहीं बनाया जा सकता तब उस को भी बल पूर्वक उसी कार्य में रखना होगा जो उसके जाति का है, ऐसा न करने से सगठन की हानि होगी।

बहुत से दर्बारी—साधु ! साधु !!

शूद्र दर्बारी—महाराजाधिराज, मेरी भी कुछ विनय है।

महाराज—कहिए।

शूद्र दर्बारी—महाराज, सेवा जिस जाति का प्रधान धर्म हो, जिस जाति ने अपमान सह कर, दुख सह कर समाज का छोटा से छोटा कार्य, दुस्तर से दुस्तर कार्य अपने शिर पर धारण कर रक्खा हो, उसका हृदय अधिक उदार होगा या उन लोगों का जो बड़े बड़े कार्यों को हथिया कर बडप्पन को अपनी पैत्रिक सम्पत्ति समझे बैठे हैं। जो सब का दुर्व्यवहार सहते हुये भी सब की मगल कामना करते हैं, सब को आशीर्वाद देते हैं उनका हृदय बड़ा है या उनका हृदय जो छोटे जनों से सेवा कराते हुये भी उनको सब प्रकार का दुख देने पर तत्पर

इस विषय में मेरी सम्मति यह है कि उदारता न उच्च कुल की सम्पति है, न नीच कुल की। यह कोई नहीं कह सकता कि किन अवस्थाओं में किस हृदय का कितना विकास होगा। इसी हृदय के विकास पर ही उसकी उदारता अवलम्बित है।

हमारे मित्र वृद्ध दर्बारी ने कहा है कि एक व्यक्ति के लिये एक जाति भर का व्यवसाय नहीं बदला जा सकता आदि। इस विषय में मुझे यह कहना है कि जाति भर का व्यवसाय न बदला जाना तो हो सकता है, परन्तु एक विशेष व्यक्ति का व्यवसाय न बदलना ठीक नहीं है। हमारे मित्र ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि एक विशेष प्रतिभावान व्यक्ति की शक्ति कितनी होती है। एक विशेष प्रतिभावान व्यक्ति सारे ससार का उपकार कर सकता है, सारे ससार का कोई दृष्टिकोण बदल सकता है, यहां तक कि सारे ससार की काया पलट कर सकता है। ऐसी अवस्था में उस विशेष व्यक्ति को व्यवसाय बदलने की स्वच्छन्दता न देना सारे ससार के साथ अन्याय

बहुत से दर्बारी—कुछ नहीं, कुछ नहीं, परन्तु हम इस व्यक्ति को प्रधान न्यायाधीश का पद प्रदान करने का विरोध करते हैं।

महाराज—अब मैं परमपूजनीय श्री १०८ राजगुरु जी से प्रार्थना करता हूं कि वे इस विषय में अपनी सम्मति प्रकट करें।

म० नि०—भाई सभासदो और महाराजाधिराज, मेरे लिये यह बड़े असमंजस का अवसर है। धर्म और न्याय एक ओर है और दूसरा ओर है लोकमत। मुझे अधिकांश दर्बारियों का मत यही जान पड़ता है कि महाशय दयासागर को प्रधान न्यायाधीश का पद न दिया जाय। इस राज्य के प्रतिनिधि इस बात का विरोध करते हैं और वे मेरे विशेष प्रिय हैं। यदि उनकी बात धर्म और न्याय के कुछ ही प्रतिकूल होती तो मैं उसका ही समर्थन करता। परन्तु मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि उनका मत धर्म और न्याय के बहुत अधिक प्रतिकूल जान पड़ता है। मेरे मित्र शूद्र दर्बारी महोदय ने यह बात कही है कि उदारता अधिकतर नीच कुल की सम्पत्ति हो सकती है।

महाराज—और कोई महाशय कुछ कहना चाहते हैं?

एक दर्बारी—महाराज यह धार्मिक मामला है।

महाराज—जन्म से मृत्यु पर्य्यन्त अपने श्रेय के लिये जो कुछ करना पड़ता है सभी धर्म है। इसलिए सभी मामले धार्मिक बताए जा सकते हैं।

[ सब हँसते हैं ]

दूसरा दर्बारी—महाराज, बहुत विचार पूर्वक कार्य होना चाहिए।

महाराज—यह विचार ही तो हो रहा है।

तीसरा दर्बारी—शास्त्र विरुद्ध बात है।

महाराज—आप शायद गुरु महाराज से भी अधिक शास्त्र जानते हैं। किस शास्त्र में लिखा हुआ है कि इतने योग्य चमार को भी प्रधान न्यायाधीश का पद नहीं मिलना चाहिए।

चौथा दर्बारी—शास्त्र में लिखा है कि शूद्र को पढ़ाना ही नहीं चाहिए।

करना है। यह तो हुआ आक्षेपों का उत्तर, इसके पश्चात में अपनी बात कहता हू।

यह बात तो निर्विवाद है कि कानूनी योग्यता में महाशय दयासागर के बराबर इस राज्य भर में कोई व्यक्ति नहीं है। वे कानूनों में क्या क्या अच्छे परिवर्तन करने की सलाह दे सकते हैं, प्रधान न्यायाधीश के पद को कितनी उत्तमता से निबाह सकते हैं इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। तब भी उनकी योग्यता को देखते हुए यह ज्ञान पड़ता है कि वे इस और इस राज्य के सारे व्यक्तियों से अधिक कार्य कर सकेंगे। उनसे इस राज्य को अचिन्त्य लाभ की सम्भावना है। उनकी इस योग्यता का अनादर पाप है—उसका अपमान है जिसने उनको यह योग्यता प्रदान की है।

यह दूसरा बात है कि हमारे मित्रों को न्यायालय से लौट कर नहाना पड़े। [ मुस्कुरा कर ] नहाने में कोई हानि तो है नहीं—उलटे शरीर और स्वच्छ हो जाया करेगा।

[ सब मुस्कुराते हैं ]

इसलिए भी कि आपने मुझे अन्याय करने पर विवश नहीं किया।

[ प्रतिहार का प्रवेश ]

महाराज—कहो क्या ख़बर है ?

प्रतिहार—महाराजाधिराज, एक दूर प्रदेश का संगीतज्ञ आया है।

महाराज—उसे उपस्थित करो । इस निर्णय के उपलक्ष्य में उत्सव की आवश्यकता ही थी।

प्रतिहार—जो आज्ञा महाराजाधिराज की।

[ जाता है ]

[ गायक का प्रवेश और प्रणाम, वह साज सामान ठीक करता है ]

महाराज—कहा से आना हुआ।

गायक—महाराजाधिराज, दास का निवास-स्थान जयपुर है।

महाराज—अच्छा कुछ सुनाओ।

[ गायक "जो आज्ञा" कह कर गाता है ]

महाराज—मगर आफत तो यह है कि शूद्र ने शास्त्र भी पढ डाले हैं। शास्त्र ने ग़लती की जो अछूत की समझ में आ गया।

एक दर्बारी—महाराज, तो अन्तिम निर्णय क्या हुआ? आप की सम्मति?

महाराज—जब स्वयं गुरु महाराज का यही विचार है कि दयासागर महोदय को प्रधान न्यायाधीश का पद मिलना चाहिए, तो मेरी सम्मति पूछने की क्या आवश्यकता है? आप लोगों ने भी तो कभी उनका विरोध नहीं किया। क्या आज विरोध करेंगे?

सब के सब—कभी नहीं।

महाराज—तो बधाई है आप को आप के न्याययुक्त निर्णय पर। मैंने माना कि यह बात नई है, पर है बहुत ही उत्तम। जो जिसके योग्य है उसे जाति पांति का विचार छोड कर उसी स्थान पर बैठाना चाहिए। आप ने इस समय सब प्रकार के मानसिक पक्षपात पर जो विजय पाई है उसके लिए आप को साधुवाद और साधुवाद

सजल नेत्र हो जाते हैं। फिर कहते हैं ] बिना गद्दे की कुर्सी मँगवाऊ ?

[ घंटी बजाते हैं ]

[ एक नौकर का प्रवेश ]

[ नौकर से ]

देखो, एक बिना गद्दे की कुर्सी लाकर उधर, जहा दरी नहीं है वहा रक्खो।

[ नौकर कुर्सी लाकर उसी जगह रखता है। हरिकरण उपाध्याय उसी पर बैठते हैं ]

दयासागर—[ दीनभाव से ] काठ में भी छूत है। आप को यहा से जाकर स्नान करना पड़ता है। बडे कष्ट की बात है। सगमर्मर की कुर्सी में तो कोई छूत न होगी।

हरिकरण उपाध्याय—अधिक कष्ट मत सहो। मेरा स्नान करने का समय भी आगया।

दयासागर—मेरे कष्ट की बात तो आप न पूछिए। अपने जीवन दाता—अपने पालने वाले—अपने को विद्या दान करने वाले—फिर अन्त में न्यायाधीश के पद पर

सब रक्खो छोटों पर प्रीति,
सब से बढ़के है दुनियां में यही एक बस नीति,
छोटों पर जो न्याय करोगे नाथ करेंगे स्नेह,
नहीं रहेगी जग में तुम को फिर कोई भी भीति।

---

## दृश्य ३

[ स्थान—दयासागर के घर का एक कमरा—दयासागर एक आराम कुर्सी पर बैठे हुए हैं। कमरा आज कल के ढङ्ग से सजा हुआ है। हरिकरण उपाध्याय का प्रवेश ]

दयासागर—[ खड़े होकर—आगे बढ़ कर और चरण छूने के लिए आधा झुक कर ठिठक जाते हैं और पीछे हट के झुक कर प्रणाम करते हैं ]

हरिकरण उपाध्याय—[ दोनो हाथ सिर के पास तक ले जाते हैं—पर सिर पर फेरते नहीं है—उनको दूर ही दूर रखते हैं ] आशीर्वाद, आशीर्वाद,—ईश्वर करे तुम दीर्घायु हो।

दयासागर—[ उनकी ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखते हु

मुझे सदैव माथे से लगाए रहना चाहिए मैं कभी छू भी नहीं सकता [ आँखो में आँसू भर जाते हैं ]

हरि० उ०—क्या बताऊ पडितो, धर्माध्यक्षों का विधान तोड़ा नहीं जा सकता। [ गहरी साँस लेते हैं ]

दयासागर—दादा, मैं निन्दा नहीं करना चाहता। पर अब इतना दुख होता है कि रहा नहीं जाता। आप यदि एक बार इन धर्माध्यक्षों और पडितों का आचरण अपने आँखों से देख पावें तो आप की उन पर तनिक भी श्रद्धा न रह जावे। आप बड़े हैं। आपका हृदय बड़ा है। आप सभी को बड़ा और अच्छा समझते हैं। आप समझते हैं कि ब्राह्मण लोग सच्चे धार्मिक भाव से और व्यक्तिगत सम्मति के कारण अछूतों को नहीं छूते। यदि ऐसाही होता तो अधिक हानि नहीं थी। परन्तु वे लोग अछूतों को पद-दलित रखने के लिए धर्म का ढोंग रच कर उन्हें नहीं छूते।

हरि० उ०—बेटा, आज तुम्हें क्या होगया है। तुम तो कभी किसी की निन्दा नहीं करते थे।

पहुँचाने वाले के चरण छूने से भी मैं वञ्चित हूँ। इस कष्ट का अन्त इस जन्म में हो भी नहीं सक्ता। मैं सुखी कैसे हो सकूगा?

हरि० उ०—दया, क्या तुम मेरे न छूने से बुरा मानते हो। मैं केवल इसीलिए तुम्हें नहीं छूता कि मैं ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र नही हूं। मैं तुम्हें छू लेता हू तो मेरे घरवाले तब तक मुझे नहीं छूते जब तक मैं नहा कर कपडे नहीं बदल लेता। मैं समाज के बन्धन में हू, जिसे तोडने की शक्ति मुझमें नहीं है। जिस दिन मैं परिवार वालों का मोह छोड कर समाज से अलग होने का साहस कर सकूगा उस दिन मैं तुम्हे छू सकता हूँ। अभी मुझमें इतनी शक्ति नही है।

दयासागर—आप मेरे लिये पिता से भी बढ कर है—आप मेरे सब कुछ हैं—आपने मुझे उन्नति के मार्ग पर चलाया है। आपका मेरे साथ कैसा भी व्यवहार क्यों न हो, मैं बुरा कभी नहीं मान सकता। ईश्वर जानता होगा, मेरे हृदय में केवल दुख होता है—क्षोभ नहीं। इस दुख को आप नहीं समझ सकते। ऐसे दिव्य चरण जिन्हें

प० राम०—सरकार क्या कहूँ ! आप के दरबार में छोटे लड़के का मुकदमा है।

दयासागर—उन्होंने क्या किया ?

प० राम०—उसने किया तो कुछ नहीं। पुलिस ने बिचारे को झूठ मूठ ही चोरी के अपराध में फाँस लिया है। मेरा लड़का भला चोरी कर सकता है सर्कार ?

दयासागर—मैं कैसे कहूँ कि कर सकता है या नहीं।

प० राम०—सर्कार, आप मालिक हैं। आप का कहना ठीक है। आप कैसे कह सकते हैं ऐसा ? परन्तु हम लोगों पर सरकार की कुछ कृपा चाहिए।

दयासागर—पंडित जी, मैं तो आप का दास ही हूँ। मैं भला आप के विरुद्ध कुछ कर सकता हूँ ? परन्तु आप लोग तो मुझसे घृणा करते हैं, मुझको अछूत कहते हैं; फिर भी मैं आप की सेवा करूँगा। कहिये आप क्या चाहते हैं ?

प० राम०—सर्कार, अब मैं क्या कहूँ—आप समझ लीजिये।

दयासागर—दादा, मैं ठीक कह रहा हूँ। मेरे पास प्रमाण हैं। मैं अभी आप को सब कुछ आँखों से दिखाए देता हूं। आप को कष्ट तो होगा, पर आज मेरे अनुरोध से उन लोगों का हाल देख ही लीजिये।

[ घन्टी बजाते हैं ]

[ नौकर का प्रवेश ]

[ नौकर से] दादा की कुर्सी परदे के आड में रख दो।

[ कुर्सी पर्दे के आड में रख दी जाती है और हरि करण उपाध्याय आड में बैठ जाते हैं ]

[ नौकर से ] पडित राम नारायण आचार्य बाहर बैठे हुए हैं, उन्हें बुलाओ।

[ नौकर बाहर जाता है ]

[ पडित राम नारायण का प्रवेश ]

पडित राम नारायण—सरकार को आर्शीवाद।

दयासागर—पालगन पडित जी, चिराजिए। कहिए कैसे आना हुआ ?

दयासागर—अच्छा जलपान कीजिये। [घंटी बजाते हैं]

[नौकर का प्रवेश]

क्यों रे मिठाई उठा लाया है। पंडित जी के लिए कुछ ताजी चीज़ ला।

[नौकर "जो हुकुम सर्कार का" कहता हुआ चला जाता है]

[पंडित राम नरायण, ठिठकते हैं—खिचकते हैं—चारो ओर देखते हैं। फिर कहते हैं]

पं० राम०—सर्कार किसी को मालुम न हो।

दयासागर—पंडित जी मैं तो आपका आदर सत्कार करना चाहता हूं। मैं इस छोटी सी बात को किसी से कहने क्यों चला?

पं० राम०—[खाकर] अहा! कैसा स्वादिष्ट पदार्थ है!

[नौकर एक दूसरी रिकाबी लाता है, दया सागर उठ कर उसे ले लेते हैं और अपने हाथ से मेज पर रख देते हैं। पंडित जी चुपचाप खाने लगते हैं]

दयासागर—प[illegible] मुकदमे का असली हाल तो

दयासागर—[घंटी बजाते हैं]

[नौकर का प्रवेश]

[नौकर से] पंडित जी के लिए कुछ ला।

पं० राम०—सर्कार भूख नहीं है।

दयासागर—[आँख लाल करके] फिर~ जब मुझ को अछूत समझते हो तो भिक्षा कैसी ?

प० राम०—[डर कर] सर्कार, छू है। मैं सैकड़ों पंडितों से शास्त्रार्थ कर सकता हूँ कि छुआछूत शास्त्र-

दयासागर—अच्छा जलपान कीजिये। [घंटी बजाते हैं]

[नौकर का प्रवेश]

क्यों रे मिठाई उठा लाया है। पंडित जी के लिए कुछ ताजी चीज़ ला।

[नौकर "जो हुकुम सर्कार का" कहता हुआ चला जाता है]

[पंडित राम नरायण, ठिठकते हैं—झिचकते हैं—चारों ओर देखते हैं। फिर कहते हैं]

प० राम०—सर्कार किसी को मालुम न हो।

दयासागर—पंडित जी मैं तो आपका आदर सत्कार करना चाहता हूं। मैं इस छोटी सी बात को किसी से कहने क्यों चला?

प० राम०—[खाकर] अहा! कैसा स्वादिष्ट पदार्थ है!

[नौकर एक दूसरी रिकाबी लाता है, दया सागर उठ कर उसे ले लेते हैं और अपने हाथ से मेज पर रख देते हैं। पंडित जी चुपचाप खाने लगते हैं]

दयासागर—पंडित जी मुकदमे का असली हाल तो

दयासागर—[घंटी बजाते हैं]

[नौकर का प्रवेश]

[नौकर से] पंडित जी के लिए कुछ जलपान तो ला।

प० राम०—सर्कार भूख नहीं है।

दयासागर—[आँख लाल करके] फिर वही छुआछूत। जब मुझ को अछूत समझते हो तो मुझ से कृपा की भिक्षा कैसी?

प० राम०—[डर कर] सर्कार, छुआछूत का भाव नहीं है। मैं सैकड़ा पंडितों से शास्त्रार्थ करके यह बात सिद्ध कर सकता हूं कि छुआछूत शास्त्र-विरुद्ध है। शास्त्र की दृष्टि में तो सब समान हैं। जो अपने को पंडित लगाता हो सो आ जाय सामने। बात यही है कि भूख नहीं थी।

दयासागर—बिना भूख के भी कभी कभी खाना पड़ता है।

[नौकर मिठाई की रिकाबी लिए हुए प्रवेश करता है और एक मेज पंडित जी के सामने खिसका कर उस पर रख देता है]

प० राम०—हा सर्कार।

दयासागर—यह जिम्मेदारी आप क्यों कर ले सकते हैं? क्या वह आप का आज्ञाकारी है?

प० राम०—हा सर्कार।

दयासागर—तो चोरी भी आप की आज्ञा से की होगी।

प० राम०—नहीं सर्कार। [ कांपते हैं ]

दयासागर—एक के बदले दो अपराधी देख पडते है। मैंने तो समझा था कि पहले अपराध में छोड दूँगा, पर आप लोग तो घर भर चोर जान पडते हैं। खैर जाइये मैं आप को छोडे देता हूँ। आप के लडके के बारे में जैसा होगा देखा जायगा।

[ पंडित जी बिना पानी पिए ही भागते है ]

दयासागर—[ घंटी बजाते हैं ]

[ नौकर का प्रवेश ]

[ नौकर से ] हरदयाल ओझा पुजारी को बुलाओ।

[ नौकर बाहर जाता है ]

दयासागर—[ पंडित जी से ] दादा देखा आप ने।

हरि० उ०—[ परदे की आड़ से ] हां देख रहा हूँ।

[ हरदयाल ओझा पुजारी का प्रवेश ]

हरदयाल ओझा—सर्कार को आशीर्वाद।

दयासागर—प्रणाम पुजारी जी! कहिये कैसे कष्ट किया?

हर० ओ०—जो है सो सर्कार, बड़ी आफ़त जो है सो आगई है।

दयासागर—क्या हुआ? कुशल तो है।

हर० ओ०—मेरे लड़के को जो है सो पुलिस वाले पकड़ ले गये जो है सो।

दयासागर—तो मैं क्या करूं? किस अपराध में पकड़ ले गए?

हर० ओ०—सरकार जिना विल जबर में, जो है सो।

दयासागर—ज़िना विल जब्र में?

हर० ओ०—बिना कसूर जो है सो।

स्व लिया। ब्राह्मणों का ब्राह्मणत्व और पुजारियों का
जारीपन अब जाता रहा।

दयासागर—दादा, मैंने जैसा अनुमान किया था ठीक
सा ही आचरण दोनों ने किया।

हरि० उ०—अच्छा, जाता हूँ, विलम्ब हुआ, कल घर
ाना।

दयासागर—[ दूर ही से हाथ जोड़ कर और जमीन पर माथा
क कर प्रणाम करते हैं ] जो आज्ञा।

---

## दृश्य—४

[ स्थान—मठ का एक कमरा—महन्त जी और एक अछूत औरत ]

अछूत स्त्री—खाना हमरा घरै भेज देय।

महन्त जी—अब तो [illegible] पढ़ने की चेष्टा करते हैं।

हर० ओ०—भला हमारे रहते जो है सो सरकार जूता साफ करें जो है सो। लाइये सरकार, गुलाम जो है सो तो समाने ही है। आप जो है सो क्यों कष्ट करते हैं।

[ दयासागर हरदयाल को जूता और ब्रश दे देते हैं। हरदयाल जूता साफ करता है, पहनाता है, फीता बाँधता है ]

दयासागर [ जूता पहनते पहनते ] क्यों जी सच बताओ क्या हुआ था, नहीं तो मैं तुम्हें भी पुलिस के हवाले करता हूँ। इतने भारी जुर्म के कैदी की शिफारिस करने आये हो तुम!

हर० ओ०—[ काँप कर पैर पर सिर रख देता है ] दया कीजिये जो है सो सर्कार।

दयासागर—[ घंटी बजाते है]

[ नौकर का प्रवेश ]

[ नौकर से ] इसको बाहर ले जाओ।

[ नौकर उसको घसीटता हुआ ले जाता है ]

हरि० उ०—[ परदे की आड़ से निकल कर ] बेटा मैंने

देख लिया। ब्राह्मणों का ब्राह्मणत्व और पुजारियों का पुजारीपन अब जाता रहा।

दयासागर—दादा, मैंने जैसा अनुमान किया था ठीक वैसा ही आचारण दोनों ने किया।

हरि० उ०—अच्छा, जाता हूँ, विलम्ब हुआ, कल घर आना।

दयासागर—[ दूर ही से हाथ जोड़ कर और जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम करते हैं ] जो आज्ञा।

---

## दृश्य—४

[ स्थान—मठ का एक कमरा—महन्त जी और एक अछूत औरत ]

अछूत स्त्री—बाबा हमका घरै भेज देव।

महन्त जी—सुन तो [ हाथ पकड़ने की चेष्टा करते हैं ]

अ० स्त्री—अरे ई का करत हौ महराज, का हमका छुइ ले हो का ? [ अलग जा खड़ी होती है ]

महन्त जी—क्या हर्ज है। साधुओं को किसी को छूने में पाप नहीं लगता।

महन्त जी—टेस झोपडी में रहती है। बड़ा अच्छा मकान बनवा दूँगा।

अ० स्त्री—हमका हमार झोपड़िन अच्छी या—धरे रहौ आपन मकान।

महन्त जी—सूखी रोटी खाया करती है। मैं तुझको मालपुआ खिलाऊंगा।

अ० स्त्री—तुही अपने भरसारी अस पेट मां माल-पुवा भर लेव। हम सूखिन रोटी खाव। हमार पिंड छोड़ौ।

महन्त जी—[ सीटी बजाते हैं—रुपयों की थैली लिए हुए एक साधु आता है—वे थैली ले लेते हैं और उसे जाने का इशारा करते हैं—वह चला जाता है ] देख [ थैली खोल कर और रुपए निकाल कर ] कैसे चमकते हुए रुपए हैं। इन्हीं से भरी हुई थैली तुझको दूँगा।

अ० स्त्री—[ रुष्ट होकर ] हम थूकित है तोहरी थैली पर।

महन्त जी—चुप चुड़ैल कहीं की। [ फिर कुछ नरम होकर ] मैं तो नहीं जाने दूँगा तुझको।

अ० स्त्री—तोहार माछी जाय देई । तोहार का अख्तियार है जो न जाइ देहौ ? हम हल्ला मचाइत है।

महन्त जी—यहाँ से हल्ला कहीं सुनाई नहीं पडेगा।

अ० स्त्री—महराज हमका छोड देव नहीं तो हम आपन जिउ दै देब।

महन्त जी—[ मुस्कुरा कर ] जिउ न दे, हमको अपना मन दे दे।

अ० स्त्री—महराज जबान सम्हार के बोलौ ।

महन्त जी—[क्रोधित होकर] देख सीधे सीधे रास्ते पर आ, नहीं तो तेरी जान जायगी ।

अ० स्त्री—मरै का तो एक दिन हेन है। जिउ चला जाई तो चला जाई मुदा धरम न छोडब ।

महन्त जी—बडी धर्मवाली । अगर धर्म रखना चाहेगी तो तेरी बडी खराबी होगी। बडी बुरी तरह से मरेगी ।

अ० स्त्री—चाहे कैसेउ मरी, पर आपन सत्त न छोडब।

महन्त जी—लोहे की छड़ आग में तपा के लाल की जायँगी और तुझको उसी से छेदा जायगा।

अ० स्त्री—[जोश में आकर] जाहे में तोहार छाती ठंढी होय कर लेव।

महन्त जी—[फिर सीटी बजाते हैं—एक भयानक मनुष्य आता है। उसके कान में कुछ कहते हैं। वह चला जाता है और आग से भरी अँगीठी और लोहे के सीकचे लेकर फिर आता है] [भयानक मनुष्य से] गरम करो सीकचों को। [अछूत स्त्री से] देखती है?

अ० स्त्री—[काँप कर] महाराज, ई मनई का लौटाय देव, तुम्हरे पाँव परी। ई मोसे न सहा जाई।

महन्त जी—[भयानक मनुष्य से] अच्छा जाओ।

अ० स्त्री—महराज किवाड़ बन्द कर देव।

महन्त जी—[हँस कर] अच्छा [किवाड़ की साँकल चढ़ा लेते हैं]

अ० स्त्री—[दरवाजे से दूर जाकर] इधर आवा महराज।

[ महन्त जी पास जाते हैं—अछूत स्त्री झपट कर उन पर आक्रमण करती है और उनको उठाकर पटक के छाती पर चढ़ बैठती है ]

[ गुप्त द्वार से सदानन्द का प्रवेश ]

सदानन्द—महाराज क्या आपको कुश्ती लड़ने का शौक हुआ है ?

[ अछूत स्त्री उठ जाती है। महन्त जी कपड़ा झाड़ते हुए खड़े हो जाते हैं और लज्जित होते हैं ]

महन्त जी—सदानन्द तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। किसी से कुछ कहना नहीं।

सदानन्द—कुश्ती लड़ने का शौक बुरा नहीं है पर औरत से मुँह की खा जाना भी अच्छा नहीं है। अच्छा खैर! आपकी की हार की बात कहीं न कहुँगा।

[ महन्त जी सदानन्द के पैर पर गिर पड़ते हैं ]

[ सदानन्द गाता है ]

सती का मत करना अपमान,
शत रवि के समान सतियां हैं गुप्त तेज की खान,
सतियों की सहायता करना है नर का अभिमान,

देवों की पूजा से बढ कर है उनका सम्मान,
उनके गुण गाने से प्रमुदित होते हैं भगवान।

---

## दृश्य—५

[स्थान—दयासागर का न्यायालय—दयासागर मेज सामने रक्खे हुए गद्देदार कुर्सी पर बैठे हैं। मुन्शी एक ओर बैठा हुआ है—चपरासी का प्रवेश]

चपरासी—हुजूर, कुछ चमार-मेहतर बाहर खड़े हैं, कोई दरख्वास्त लेकर आए हैं।

दयासागर—[चुरुट सुलगाते हुए] अन्दर बुलाओ [चपरासी बाहर जाता है और एक छोटे से भुण्ड को भीतर लाता है]

एक अछूत—सर्कार, आप के हजूर में एक अर्जी अहै।

दयासागर—लाइये [अर्जी मेज पर रख देते हैं और उस अछूत की ओर मुँह करके कहते हैं] कहो यह कैसी अर्जी लाए ? कुछ कहोगे भी ?

वही अछूत—सर्कार, पुजारी और ब्राह्मण लोग हमका मन्दिर के भीतर नहीं जाय देतें।

दूसरा अछूत—सर्कार हम मानता माने रहित है पर ठाकुर जी की पूजा अपने हाथ से नहीं करै पाइत।

तीसरा अछूत—सर्कार, ठाकुर जी के दर्शने करै का नहीं मिलत तो पूजा कैसे करी।

चौथा अछूत—सर्कार, हम मन्दिर को सीढी पर पैर धर देई तो सीढी धोई जात है।

दूसरा अछूत—सर्कार, का भगवान के दरबार में छोटे बडे कै विचार था ?

तीसरा अछूत—सर्कार, हिन्दू धरम मा रहै के कारण हमें ई सब भोगै परत है। अवहिन मुसलमान होइ जाई, ईसाई होइ जाई तो ये पुजरी-वन हम से हाथ मिलावैं, खा साहब और साहब कहै लागैं।

चौथा अछूत—पै सरकार आपन धरम कैसे छोड़ी, अपने राम किशन का छोड देई, अपने हिन्दू भाइन का छोड देई ?

पहला अछूत—सरकार मान के पीछे अपने धरम कै और भाइन कै ममता नहीं छोड़ सकित।

दूसरा अछूत—पर सरकार, हिन्दुओ धरम का चाही कि हम पर किरपा करैं। सरकार, तू तो धरम शास्तर पढे अहा, बतावा, का धरम सच्चै अस कहत है कि हमका छुवै न चाही।

दयासागर—[ हँस कर ] हाँ कहत तो है।

तीसरा अछूत—[ हाथ जोड़ कै ] ना सरकार, तुम हमार माई बाप हो—तुम अस न कहौ। का पढ लिख के हम से अलग होइ जइहौ। हम तो तुमका अपनै समझित है।

दयासागर—[ मुस्कुरा कर ] भाई हम तो तोहार हैइयै अही, पर बाम्हन लोग कहत हैं कि हम अछूतन का कसत छुई। ऊतो नाली के पानी से हाथ धोवत हैं।

चौथा अछूत—सरकार यह माँ हमार कसूर नहि न।

जो बाम्हन का हमार काम करै के परै तो वहू के ऐसेन सुभाव होइ जाय।

[ दो ब्राह्मणों का प्रवेश ]

एक ब्राह्मण—न्यायाधीश महोदय, आप इस बात के घमंड में न रहियेगा कि आप न्यायाधीश हैं। भलाई इसी में है कि आप इन नीच अछूतों के प्रार्थना पत्र को फाड के फेंक दीजिये। नहीं तो आप के हक में अच्छा न होगा।

दयासागर—[ घंटी बजाते हैं—चपरासी आता है ]

[ चपरासी से ] पुलिस बुलाओ।

दूसरा ब्राह्मण—[ कटार निकाल कर न्यायाधीश की ओर दौड़ता है और कहता है ] चाहे फाँसी हो जाय मगर आज तुझे यमराज के घर पहुँचा दूँगा। बदमाश कहीं का, तूने मेरे लड़के को बेकुसूर बीस बरस की सजा दे दी।

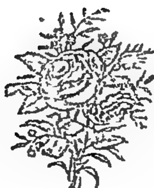
[ एक अछूत उसको पकड़ के पटक देता है और कटार छीन लेता है ]

[ पुलिस का प्रवेश ]

[ दोनों ब्राह्मणों को पुलिस पकड़ लेती है और अदालत के बाहर ले जाती है। अछूत लोगों को भी चपरासी बाहर जाने का इशारा करता है ]

[दयासागर गम्भीर बैठे रहते हैं—परदा गिरता है ]

( दूसरा अङ्क समाप्त )



# अंक—तीसरा

## दृश्य—१

[ स्थान—फुलवारी—हरिकरण उपाध्याय की लड़की और उसकी एक सखी, हरिकरण उपाध्याय की लड़की गारही है ]

गान

जगत है असमंजस भारी,
इसके चक्कर में पड़ कर है
मानव की मति गति हारी,

क्या अनुचित है, क्या समुचित है,
नहीं समझते नर नारी।
बहुत अधिक यह चाल कुटिल है,
जाल जटिल है ससारी।

सखी—तो मैं बाबू जी से कहदूँ।

कन्या—देख तू मुझे बहुत छेड़ती है। मेरा नाम सुशीला नहीं जो मैं तुझसे अब बोलू।

सखी—हा तुम मुझ से क्यों बोलोगी, बोलोगी दयासागर से, बुलादूँ क्या?

सुशीला—फिर वही बात। जब देखो तब उनका नाम। मुझसे उनसे मतलब!

सखी—जो मतलब फूल को भौंरे से है, चकोर को चन्द्रमा से है, कमलिनी को सूर्य से है वही मतलब तुमको उनसे है। है न?

सुशीला—[उसका मुह हाथों से पकड़ कर] तू तो बड़ी मुँहफट हुई जा रही है।

सखी—कुछ रिशवत दो, नहीं तो अब बाबू जी को खबर देती हूँ—अभी, अभी।

सुशीला—[ मुस्कुरा कर ] अच्छा मानजा तेरे लिये भी किसी को ढूँढ दूँगी।

सखी—जब अपने लिये किसी को ढूँढने से फ़ुरसत मिलेगी तब न !

सुशीला—[ लजा कर सिर नीचा कर लेती है ] जा तुझसे नहीं बोलूँगी।

सखी—[ उसकी ठुड्डी पर उँगली रख के ] जरासा बोल दो। क्यों वे इसी तरह मनाया करते हैं न ?

सुशीला—[ एक हलकी चपत लगा कर ] तेरा सिर !

सखी—अच्छा सुनो, गाना गाती हूँ :—

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई,
जाके सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु आपना न कोई,
छोड़ दई कुल की कान क्या करेगा कोई ?
असुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई,
अब तो बात फैल गई जाने सब कोई॥

कहो मन का गाना है कि नहीं ?

सुशीला—कौन हैं ये गिरिधर गोपाल ?

सखी—वही दयासागर—बहन, बड़ी कठिन समस्या है। तुम्हारे बाबू जी इस सम्बन्ध को कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

सुशीला—[ सखी के गले में हाथ डाल कर ] तब फिर मैं क्या करूँगी ?

सखी—यही तो मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ।

सुशीला—बहिन, कुछ समझ में नहीं आता। तुम्हीं बताओ।

सखी—मैं क्या बताऊँ ? जो तुम्हारे बाबू जी कहें वही करना उचित है।

सुशीला—क्या दूसरे के साथ विवाह करलू ?

सखी—और नहीं तो क्या करोगी।

सुशीला—ऐसा कैसे हो सकता है। अब दूसरे के साथ विवाह करके क्या भ्रष्टाचारिणी बनूँगी ? मन से जिसे वर लिया उसे वर लिया।

सखी—मुझे नहीं मालूम था कि तुम दूसरी सावित्री हो। कठिनता तो तब होगी जब तुम्हारे बाबू जी जाति

पाँति के बन्धन को न तोड़ सकेंगे और तुम्हें बल पूर्वक दूसरे के साथ व्याह देंगे।

सुशीला—तो विष तो कहीं नहीं गया है।

सखी—चुप रहो, ऐसी बात जिह्वा पर मत लाओ। विष खाना पडे तुम्हारे शत्रु को।

सुशीला—तो उस अवस्था में दूसरा उपाय ही क्या होगा ?

सखी—क्या जन्म भर कुमारी रहना तुम से नहीं हो सकेगा ?

सुशीला—तुम बडी शैतान हो। इतनी विकट समस्या पर बात चीत करने में भी दिल्लगी सूझती है ?

सखी—दिल्लगी नहीं, तुमसे नही हो सकेगा [ हँसती है ]

सुशीला—तुमसे तो शायद अब तक कुमारी रहना भी न हो सका होगा।

सखी—[ लजा कर ] चुप।

सुशीला—कुमारी रहना होसके चाहे न हो सके, बिना विवाह किये बचने पाऊ गी ? बाबू जी कहेंगे न कि इसमें मेरी बदनामी है। कौन समझेगा कि मैं ऐसा कर सकूंगी ? कोई कुछ उडादे तब क्या होगा ?

सखी—और तुम्हीं कहीं उडदो तब।

सुशीला—[बनावटी क्रोध दिखा कर] मैं तुम्हारी तरह थोडे हूँ, ऐसे तू न मानेगी [कान पकड कर एक चपत लगाती है)

[दयासागर का प्रवेश]

दयासागर—यह चपतबाजी क्यों हो रही है।

सुशीला—इसने मुझे गाली दी है। मैं तुम्हारे इजलास में नालिश करूँगी।

दयासागर—तब तो बडी कठिनता से सामना करना पडेगा। भौंरा हो तो उसे कमल में बन्द रहने की सजा दी जा सके, पर कमल को क्या सज़ा दी जावेगी ?

सुशीला—सूरज को बादलों से ढक दिया जावे।

सखी—और तुम्हो तो परी हो, ऊपर उड जाओगी और बादल घसीट घसीट कर सूरज के सामने लाओगी।

सुशीला—नहीं, इस काम के लिये तुम रक्खी गई हो। तुम्हारी आँखें सब को नचाती हैं। बादल भी उनके वश में हैं। आँखों से इशारा कर देना वे सूरज पर आ आजायँगे।

[ आप ही आप लज्जित होती है ]

दयासागर—यहां से भागना चाहिये। मैं कविता सुनने का आदी नहीं हूं। [ जाने को उद्यत होते हैं ]

सखी—ठहरिये, ठहरिये, मुकदमा पेश होगा। या मेरे रहने के कारण यहा मन नहीं लगता। चली जाऊँ? साफ साफ कहते क्यों नहीं? [ जाने को तय्यार होती है ]

सुशीला—तू क्यों जाती है, मैं ही चली जाती हूँ [ चली जाती है ]

सखी—न्यायाधीश जी, आप बड़े निठुर हैं।

दयासागर—क्यों, मैंने क्या निठुरता की है?

सखी—कोई आप को देखना चाहता है, पर आप आते ही नहीं। कोई बुलाए भी तो बुलाता रहे, आप की बला से! आज कैसे भूल पड़े?

दयासागर—दादा बुला आए थे, इसलिये आया हूँ तुम्हारे बुलाने से नहीं। [कुछ गंभीर होकर] अब इस घर में बहुत आना जाना ठीक नहीं है।

सखी—हां, किसी के घर बहुत आना जाना न्याया-धीश के गौरव के विपरीत है।

दयासागर—यह एकही रही, लगाया न मन माना अर्थ तुमने हमारी बात का। तुम लोगों से बोलना आफ़त है।

सखी—फिर क्यों ठीक नहीं है?

दयासागर—देखो लोग न जाने क्या कहेंगे। मैं सुशीला देवी के पास न आऊँ जाऊं तो अच्छा है।

सखी—लोग तो कहते रहे हैं, और अधिक क्या कहेंगे? वे आपसे प्रेम करती हैं। क्या किसी के कहने सुनने के डर से आप उन्हें छोड़ देंगे?

दयासागर—छोड़ न दूंगा तो क्या करूंगा ? छोड़ने न छोड़ने का प्रश्न ही क्या है ? कहां मैं और कहां वे !

सखी—आप ऐसा क्यों कहते हैं। "जिहि पर जेहि कर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलै न कछु सदेहू।"

दयासागर—आसक्ति और प्रेम में अन्तर है।

सखी—[ कुछ रुष्ट होकर ] क्या आप समझते हैं कि मेरी सखी को सच्चा प्रेम करना नहीं आता ? मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि उसमें आसक्ति नहीं प्रेम है। उसको आपसे विवाह करने की उतनी इच्छा नहीं है जितनी आपकी उन्नति देखने की और जन्म भर कुमारी रहने की।

—यदि उन्हें मुझसे प्रेम है भी तो होना

न होना चाहिए' यह वाक्यांश ही हो गया तो हो गया, उसमें चाहिये, 'न क्या ?

दयासागर—जो प्रेम औचित्य के विरुद्ध है वह भी एक प्रकार की आसक्ति ही है। लडकी को स्वयं पति चुनने का कोई अधिकार नहीं है।

सखी—आप ने एक विचित्र और समय के प्रतिकूल बात सुनाई! क्यों?

दयासागर—क्योंकि वह पति केवल आँखो से चुन सकती है, बुद्धि से नहीं।

सखी—अच्छा! बुद्धि से उसके लिये पति कौन चुनेगा?

दयासागर—माता-पिता।

सखी—पर आज कल के माता-पिता तो लडका लडकी बेचने लगे हैं!

दयासागर—उन पर कानून का अंकुश चाहिये, पर लडकी को पति चुनने का स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती।

सखी—हानि क्या होगी?

दयासागर—सब से सुन्दर की खोज होगी?

दयासागर—छोड़ न दूंगा तो क्या करूँगा ? छोड़ने न छोडने का प्रश्न ही क्या है ? कहां मैं और कहां वे !

सखी—आप ऐसा क्यों कहते हैं। "जिहि पर जेहि कर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलै न कछु सँदेहू ।"

दयासागर—असक्ति और प्रेम में अन्तर है।

सखी—[ कुछ रुष्ट होकर ] क्या आप समझते हैं कि मेरी सखी को सच्चा प्रेम करना नहीं आता ? मैं दावे के साथ कह सकती हू कि उसमें आसक्ति नहीं प्रेम है। उसको आपसे विवाह करने की उतनी इच्छा नहीं है जितनी आपकी उन्नति देखने की और जन्म भर कुमारी रहने की।

दयासागर—यदि उन्हें मुझसे प्रेम है भी तो होना न चाहिए।

सखी—'प्रेम न होना चाहिए' यह वाक्यांश ही ग़लत है। प्रेम हो गया तो हो गया, उसमें चाहिये, न चाहिए का प्रश्न क्या ?

सखी—बराबरी का यह अर्थ नहीं है कि गुणहीन को गुणी मिल जाना चाहिए। गुणी को गुणी और गुण-हीन को गुणहीन।

दयासागर—यदि गुणहीन और गुणी का मेल हो गया तो क्या हानि होगी।

सखी—निर्वाह न होगा और गुणी की उन्नति में बाधा पड़ेगी।

दयासागर—निर्वाह करना पड़ेगा, इससे सहिष्णुता की शिक्षा मिलेगी और साथ ही गुणी के संग से गुण-हीन की उन्नति होगी।

सखी—इसका फल यह होगा कि संसार में अति गुणी पैदा ही न होंगे।

दयासागर—पर दूसरी ओर थोड़े गुणियों की संख्या अधिक हो जायगी और संसार में पहले की अपेक्षा अधिक सुख-शांति रहेगी। अन्यथा गुणहीनों की दिनों दिन अधोगति ही होती जायगी।

सखी—न्यायाधीश से बहस में मैं नहीं जीत सकती।

सखी—तो आप सब से सुन्दर हैं, इसी लिये मेरी सखी आप पर रीझ गई हैं।

दयासागर—[ लज्जित होकर ] यह मैं नहीं कहता। सौन्दर्य कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है। जिस की दृष्टि में जो सुन्दर हो।

सखी—अच्छा तो आप शायद मेरी सखी की दृष्टि में सब से सुन्दर हैं? और जो आप के गुणों पर रीझी हों तो!

दयासागर—यह कैसे हो सकता है? मुझ में कोई गुण है ही नहीं। पर पिता एक गुणहीन के साथ भी सम्बन्ध जोड दे तो कन्या को उसी के साथ रहना चाहिये।

सखी—यह क्यों?

दयासागर—यह इसलिये कि समाज का हर एक मनुष्य बराबर है। वह चाहे गुणी, हो चाहे गुणहीन हो।

सखी—बराबरी का यह अर्थ नहीं है कि गुणहीन को गुणी मिल जाना चाहिए। गुणी को गुणी और गुण-हीन को गुणहीन।

दयासागर—यदि गुणहीन और गुणी का मेल हो गया तो क्या हानि होगी।

सखी—निर्वाह न होगा और गुणी की उन्नति में बाधा पड़ेगी।

दयासागर—निर्वाह करना पड़ेगा, इससे सहिष्णुता की शिक्षा मिलेगी और साथ ही गुणी के संग से गुण-हीन की उन्नति होगी।

सखी—इसका फल यह होगा कि संसार में अति गुणी पैदा ही न होंगे।

दयासागर—पर दूसरी ओर थोड़े गुणियों की संख्या अधिक हो जायगी और संसार में पहले की अपेक्षा अधिक सुख-शांति रहेगी। अन्यथा गुणहीनों की दिनों दिन अधोगति ही होती जायगी।

सखी—न्यायाधीश से बहस में मैं नहीं जीत सकती।

यह क्यों नहीं कहते कि आप को मेरी सखी से प्रेम नहीं है। मन किसी दूसरी ओर लगा है।

दयासागर—यह आप मेरे साथ अन्याय करती हैं। हृदय तो खोल के दिखाया नहीं जा सकता।

सखी—तो फिर आप आने जाने से इन्कार क्यों करते हैं?

दयासागर—आपने इस बात पर सोचा नहीं, इसी से आप का कारण नहीं समझ पडता है। मैं अपने हृदय का बलिदान कर सकता हूं, पर दादा से विश्वासघात नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे पाला पोसा, पढा लिखा कर इस पद पर पहुँचाया। क्या मैं इन सब बातों का बदला उन्हें इस प्रकार दूँ कि उनके प्रिय वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध उनकी लडकी से प्रेम करूँ। चाहे मेरे प्राण निकल जॉय पर मैं ऐसा नहीं कर सकता।

सखी—क्या आप को भी यह समझाना पडेगा कि इस प्रेम को वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध समझना भ्रान्ति है।

दयासागर—है, पर कदाचित दादा ऐसा नहीं समझते हैं।

सर्जा—पर क्या उनकी भ्रान्ति के कारण आप अपने और एक अबला के जीवन का बलिदान कर देंगे।

दयासागर—अपने जीवन का अवश्यमेव बलिदान कर दूंगा और यदि सुशीला देवी को भी कष्ट हो तो उसमें मेरा अपराध नहीं है।

[ हरिकरण उपाध्याय का प्रवेश—दयासागर उठ खड़े होते हैं और साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं ]

हरिकरण० उ०—[ दयासागर को बलपूर्वक उठा कर गले लगाते हुए ] बेटा तुमको धन्य है। तुम एक रत्न हो। अभी तक मैंने तुम्हारा मूल्य नहीं परखा था। मैंने तुम्हारी सब बातें सुनली हैं।

दयासागर—[ पैर पर गिर पड़ते हैं ] दादा, अब तक मैंने सुशीला से बातचीत करके जो अपराध किया है उसे क्षमा कीजिये। [ सजल नेत्र हो जाते हैं ]

---

## दृश्य—२

[ स्थान—मठ का आगन—एक अछूत किसान—महन्तजी और उनके दो सिपाही ]

अ० किसान—सर्कार मोरे हियाँ चोरी होइ गै है—लोटा थारी सब चला गवा। अब मैं लगान कहां से देव।

महन्त—आज का दिन लगान लाने के लिए आख़िरी दिन था। तू क्यों नहीं लाया ?

अ० किसान—सर्कार चोरीवा जौन होइ गै।

महन्त—बदमाश कहीं का, बहाना करता है।

अ० किसान—नहीं सर्कार, भगवान जानत हैं, हम बहाना नाहीं करित।

महन्त—बहाना तो हई है। बोल अभी जाके लाता है कि नहीं ?

अ० किसान—महराज कहां से पाउब। कौनो साहूकारो उधार नाहीं देत।

महन्त—उधार दे या न दे, हमको तो अपना लगान चाहिये।

अ० किसान—महराज येह साल ठहर जाव, हम दुसरे साल दै देव।

महन्त—इस साल ठहर जाय तो क्या मालगुजारी अपने घर से दें?

अ० किसान—सर्कार आप के घर में लाखन भरा है—एक साल दै देव, दुसरे साल हमसे लै लिही। हम बिआजो देय का तय्यार हैं।

महन्त—कह दिया—यह नहीं हो सकता।

अ० किसान—तो कसत करी महराज?

महन्त—यह बदमाश ऐसे नहीं देगा।

अ० किसान—सर्कार, आप जब बोलत हैं तब बदमाशै कहि के बोलत है। मैं बदमाश ओदमाश नहीं हैं। अच्छे घर का है।

महन्त—अच्छा टर्राता है। सिपाही, लगें तो जूते।
[ सिपाही जूते मारता है ]

अ० किसान—सर्कार पिटवावत काहे हो—नालिश करौ, कुरकी भिजवाऔ।

महन्त—और लगें—यहां जूतों से रुपये वसूल किये जाते हैं—नालिश नहीं की जाती [क्रोध से ओठ काटते हैं]

अ० किसान—बस सर्कार अब नहीं सहा जात [सिपाही को तान के एक थप्पड़ देता है]

[दोनों सिपाही मिलकर उसे पटक देते हैं]

महन्त—कोई है [तीसरे सिपाही का प्रवेश] बड़ा पत्थर उठा लाओ।

[सिपाही जाता है]

लगै, लगै—[सिपाही लोग किसान को मारते हैं]

[तीन आदमियों का एक बड़ा पत्थर लेकर प्रवेश]

महन्त—[क्रोध सहित] रखदो साले की छाती पर।

[किसान चिल्लाता है, तीनों आदमी पत्थर लेकर उसकी छाती पर रखने के लिये आगे बढ़ते हैं]

महन्त—जल्दी करो—क्यों बे अब देगा लगान कि नहीं।

अ० किसान—[ चिल्लाकर और छटपटाकर ] मार डार, हत्यारे, मार डार !

[ पत्थर छाती से थोड़ी दूर रह जाता है ]

[ पुलिस के साथ सदानन्द का प्रवेश ]

पुलिस का एक सिपाही—[ ललकार कर ] खबरदार !

[ महन्त के तीनों आदमी पत्थर एक ओर पटक कर भागते हैं ]

[ पुलिस इन्स्पेक्टर का प्रवेश ]

पुलिस इन्स्पेक्टर—सिपाही, क्या देखा ?

पुलिस का सिपाही—सर्कार, यह पत्थर इसकी छाती पर रक्खा जा रहा था ।

पु० इ०—[ सदानन्द से ] आप ने भी देखा ?

सदानन्द—जी हां ।

पु० इ०—गवाही दीजिएगा ।

सदानन्द—क्यों नहीं ?

[एक और साधु का प्रवेश]

पु० इ०—[ साधु से ] आपने भी देखा ?

साधु—जी हां, दूर से देख रहा था।

पु० इ०—तब भी बचाने के लिये आगे नहीं बढ़े।

साधु—महन्त जी हमारी ख़बर ले डालते, शायद हमारी भी वही दशा होती!

पु० इ०—यही बात अदालत में कहोगे?

साधु—पहले महन्त जी को गिरफ़्तार कीजिए, तब जवाब दूँगा।

पु० इ०—[पुलिस के सिपाही से] गिरफ़्तार करो।

महन्त जी—ख़बरदार!

[पुलिस का सिपाही हिचकता है]

पु० इ०—[कड़क कर] मैं कहता हूं कि गिरफ़्तार करलो।

महन्त—सिपाहियो—लगे इन पुलिस वालों को।

पु० इ०—[पिस्तौल निकाल कर और दिखा कर] समझ रखना। जरा भी हिले डुले कि वार हुआ।

[महन्त डर जाते हैं—सिपाही उन्हें गिरफ्तार कर लेते और ले जाते हैं]

[ कई साधुओं का प्रवेश ]

[ सब बैठते हैं ]

एक साधु—भाई, पचो, आज महन्त का आसन ख़ाली हो गया। यह तो स्पष्ट है कि ऐसे दुराचारी व्यक्ति का इन महन्त पद पर अब तक रहना हमारे लिये लज्जा की बात थी। इनके जो सब से पहले शिष्य हैं वे भी अवश्य ऐसे ही होंगे। उनके गद्दी पर बैठने से फिर घोर अनर्थ होने की सम्भावना है। इस से मेरा प्रस्ताव है कि प्रधान न्यायाधीश महोदय के यहां प्रार्थना-पत्र देकर हमें महन्त चुनने का अधिकार माँगना चाहिए। यह आवश्यक बात नहीं है कि पुराने महन्त के सबसे पहले शिष्य को ही महन्त का पद प्राप्त हो।

सब साधु—उचित है, उचित है।

वही साधु—धर्म संस्थाओं में महन्त का निर्वाचन एक मनुष्य की बुद्धि पर न छोड़ कर पचों की सम्मति से होना चाहिए।

सब साधु—सर्वथा उचित है।

---

## दृश्य—२

[स्थान—राजभवन का एक कक्ष—राजकुमार और सुशीला।]

राजकुमार—सुशीला, मेरी ओर देखो, मैं तुमको प्यार करता हूं, तुम पर जान देता हूं, क्या तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती ?

सुशीला—महाराजकुमार, आप ऐसा न कहिए, मैं आपके योग्य नहीं हूं। आपका महल तो किसी राजकुमारी से ही सुशोभित होना चाहिए।

राजकुमार—मैं सैकड़ों राजकुमारियों को तुम पर न्योछावर करता हूं।

सुशीला—महाराजकुमार, मुझे जाने दीजिए, मुझे आपसे ऐसी बातें सुन कर पीड़ा होती है।

राजकुमार—क्यों ?

सुशीला—ऐसे ही।

राजकुमार—उसी अछूत के लड़के के कारण ?

सुशीला—महाराजकुमार को किसी का इस प्रकार अनुचित तिरस्कार करना शोभा नहीं देता।

राजकुमार—उसकी ऐसी हिम्मत कि मेरी प्रतिद्वन्द्विता करे !

सुशीला—महाराजकुमार, यह आप का भ्रम है। उनका मुझसे विवाह करने का विचार नहीं है। आप उन पर व्यर्थ रुष्ट हो रहे हैं।

राजकुमार—फिर क्या तुम्हीं उस से व्याह करना चाहती हो ?

सुशीला—नहीं मैं जन्म भर कुँआरी रहना चाहती हूँ।

राजकुमार—क्यों ?

सुशीला—यों ही।

राजकुमार—क्या मुझ में रूप नहीं है ?

सुशीला—क्या नहीं है ?

राजकुमार—क्या मुझ में यौवन नहीं है?

सुशीला—है क्यों नहीं?

राजकुमार—सुशीला, क्या तुम यह राजभवन देख कर मेरी अतुल भावी सम्पत्ति का अनुमान नहीं कर सकती?

सुशीला—कर सकती हूं।

राजकुमार—यह सारी सम्पत्ति तुम्हारे पैरों तले होगी और मैं स्वयं तुम्हारा दास बनूंगा। जाति-पाति का भेद भूल कर मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा।

सुशीला—महाराजकुमार, यहाँ इन तुच्छ प्रलोभनों से काम नहीं चलेगा। मैंने कह दिया कि मैं आप के योग्य नहीं हूँ।

राजकुमार—यह तुच्छ प्रलोभन है? मेरी सम्पत्ति—मेरा ऐश्वर्य तुच्छ है?

सुशीला—[क्रुद्ध होकर] राजकुमार, आप अपने योग्य बातें नहीं कर रहे हैं। जिस सम्पत्ति पर आपको इतना अभिमान है उसे मैं लात मारती हूं। यह क्या वस्तु है,

सतीत्व-रक्षा के लिए एक सती तीनों लोक की सम्पत्ति को [ भूमि पर ठोकर मार कर ] ठुकरा सकती है।

राजकुमार—इतना अभिमान ! क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम किस से बातें कर रही हो ?

सुशीला—मालूम है। राजकुमार से !

राजकुमार—क्या यह नहीं मालूम कि तुम जो कुछ न करना चाहो उसे वह तुम से बलपूर्वक करा सकता है ?

सुशीला—मुझे अच्छी तरह मालूम है कि उसमें यह सामर्थ्य नहीं है, पर वह समझता है कि उसमें है, साथ ही मैं यह भी कह देना चाहती हूँ कि यदि उसमें इस विषय में बल-प्रयोग की इच्छा है तो वह अत्यन्त नीच है, नराधम है।

राजकुमार—तुम्हारा यह साहस !

सुशीला—और तेरा यह साहस !

राजकुमार—तू जानती है कि इसका फल क्या होगा ?

सुशीला—तू नहीं जानता कि इसका फल क्या होगा ?

राजकुमार—कोई है ?

[एक दर्बान का प्रवेश]

दर्बान—सर्कार की जय !

राजकुमार—जल्लाद को बुलाओ, इसको क़ैद करो ।

[दर्बान सुशीला को बाँध देता है और बाहर जाता है]

राजकुमार—सुशीला, क्यों जान देती हो ? अब भी मान जाओ ।

सुशीला—चुप रह कुलाङ्गार !

राजकुमार—तुम्हारी मौत आ गई है ।

सुशीला—एक अबला की हत्या को मनुष्यत्व के अनुकूल समझने वाला नीच, कामी, कुपथ-गामी ।

[जल्लाद का प्रवेश]

राजकुमार—[जल्लाद से] इसे ले जाओ और गुप्तरूप से इसका वध-स्थान में वध करो ।

[सुशीला से] जाओ तुम्हारी उद्दण्डता का यही फल होगा ।

सुशीला—धन्यवाद ।

[सब का प्रस्थान]

---

## दृश्य—४

[स्थान—महात्मा विश्वानन्द की कुटी—कुछ चेले बैठे हुए हैं—सदानन्द का प्रवेश]

एक शिष्य—अरे भाई सदानन्द, अब तो मठ के महन्त हो गये, इसी लिये कम आते जाते हो ?

सदानन्द—नहीं भाई, क्या करूँ कार्य-भार इतना रहता है कि समय ही नहीं मिलता।

दूसरा शिष्य—सचमुच क्या महन्तों को इतना काम रहता है ? हम तो समझते थे कि वे लोग मालपुआ उड़ाते हैं और मस्त पड़े रहते हैं।

सदानन्द—भय्या, काम जहां करना चाहो वहीं है। महन्तों के ऊपर तो एक भारी सभा का उत्तरदायित्व

रहता है। राजा का काम है प्रजा में शान्ति स्थापित रखना और उसकी भौतिक और मानसिक उन्नति करना, पर महन्तों का काम है लोगों की आध्यात्मिक उन्नति करना। यह दूसरी बात है कि वे कुछ न करें।

पहला शिष्य—सुना है कि आप के पहले जो महन्त थे उनको सज़ा होगई।

सदानन्द—उनको सजा भी हो गई और वे पंचों से और अदालत से महन्त पद के अयोग्य भी ठहराए गए, साथ ही पंचों को न्यायाधीश से महन्त चुनने का अधिकार भी मिल गया।

दूसरा शिष्य—मैंने तो समझा था कि आपको न्यायाधीश महोदय ने या हमारे गुरु महाराज ने महन्त बनवा दिया होगा, पर अब मालूम हुआ कि आप मठ में इतने सर्वप्रिय होगये थे कि सब ने आप ही को महन्त चुना।

सदानन्द—तुम कहो तुम, आप आप कहा तो दिया थप्पड मैंने! आप कह कर मुझको बनाता है?

[सब हँसते हैं]

पहिला शिष्य—और भाई उन ब्राह्मणों को क्या हुआ जिन्हों ने न्यायाधीश को धमकी दी थी और मारने का उद्योग किया था ?

सदानन्द—तुम तो जन्म भर पीनक में रहोगे। कुछ भी खबर नहीं रहती कि बाहर क्या होता है। गुरु महाराज से मैं लड़ूंगा।

दूसरा शिष्य—क्यों लड़ोगे ?

सदानन्द—तुम लोगों को बाहर का हाल जानने का अवसर क्यों नहीं देते ?

पहला शिष्य—अरे राम ! राम ! ऐसा नहीं कहना चाहिए, गुरु महाराज तो पूरा अवसर देते हैं—हम लोगों की सब प्रकार की शिक्षा की पूरी सुविधा करते हैं। उनसे कहीं ऐसी त्रुटि हो सकती है ? यह हमी लोगों का आलस्य है।

सदानन्द—तब तुम्हीं लोगों को पीटूंगा। क्यों घुग्घू बने रहते हो ?

पहला शिष्य—यह तो बताते नहीं कि उन ब्राह्मणों को क्या हुआ, पीटने भर को तय्यार हो।

सदानन्द—उनको न्यायाधीश महोदय ने छोड़ दिया। उनका कहना है कि उन लोगों ने धर्मावेश के कारण और पुत्र-कारावास के शोक में ऐसा अपराध किया था।

दूसरा शिष्य—और अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के बारे में क्या आज्ञा हुई ?

सदानन्द—अरे यह भी नहीं मालूम ? घोषणा करवा दी है कि अछूतों को मन्दिर में प्रवेश करने से रोकना अनुचित बल-प्रयोग समझा जायगा। जो ऐसा करेगा वह दण्डनीय होगा।

पहला—बहुत ठीक हुआ, बहुत ठीक—

सदानन्द—अच्छा तुम लोग सूत्र रटो, मैं जाता हूँ—काम के मारे आफ़त है।

---

## दृश्य—५

[ वध-स्थान—सुशीला ऊँचे पर खड़ी है—जल्लाद तलवार लिये पीछे खड़ा है । पास ही युवराज खड़े हैं ]

युवराज—सुशीला, देखो अब भी समय है, तुम इस उमर में व्यर्थ प्राण दे रही हो ।

सुशीला—हट जाइये सामने से, अथवा मैं आप को भी क्षमा करती हूँ और ईश्वर से आप के मन को पवित्र करने की प्रार्थना करती हूँ । मरते समय किसी पर क्रोध क्यों करूं ?

युवराज—तुम्हारे मरने पर मैं भी प्राण दे दूँगा, मगर तुम्हें किसी दूसरे के हाथ में पड़ते नहीं देख सकता ।

सुशीला—ईश्वर आप के मन के कल्मष को दूर करे, आप यदि प्राण दे देंगे तो दूसरे जन्म में आपका मन कुछ पवित्र हो जावेगा ।

युवराज—[ क्रुद्ध होकर ] जल्लाद अपना काम करो ।

[ दौड़ते हुए दयासागर का प्रवेश ]

दयासागर—युवराज इसे छोड़ दो, मेरा वध करवा डालो।

युवराज—तुम्हारा वध तो होगा ही, पर इसे मैं नहीं छोड़ सकता।

दयासागर—[ सुशीला से ] देवी आप मेरे लिये अपना प्राण व्यर्थ ही दे रही हैं। मुझे आप से प्रेम नहीं हैं, मुझे दूसरी स्त्री से प्रेम है।

सुशीला—हाय ईश्वर, यह क्या सुन रही हूँ।

[ आँसू पोंछती है ]

[ दयासागर से ] महाशय, इस ज्ञान से मेरे हृदय की प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

[ जल्लाद से ] तुम अपना काम करो।

युवराज—[ जल्लाद से ] जरा ठहरो—सोच लेने दो।

सुशीला—[ युवराज से ] युवराज, मैं आप से मौत की भिक्षा माँगती हूँ।

दयासागर—और मैं भी, जीना नहीं चाहता।

युवराज—[ जल्लाद से ] हट जाओ।

[ दयासागर को गले लगाते हैं—सुशीला के चरण छूकर कहते हैं ]

देवी तुम धन्य हो। ईश्वर करे तुम्हारी चिरायु हो। तुम आदर्श भारत रमणी हो, जिह्वा को शक्ति नहीं है कि वह तुम्हारी प्रशंसा कर सके।

[ महाराज, म० विश्वानन्द, कुछ दरबारी और नागरिकों का प्रवेश ]

महाराज—[ आगे बढ़ कर ] युवराज, सुशीला को दयासागर से प्रेम है या आसक्ति ?

युवराज—पिता जी, मैं अपने सन्देह के लिये लज्जित हूँ।

महाराज—बेटा लज्जित होने की कोई बात नहीं है, तुम्हारी शुद्ध अच्छा है। बिना कसौटी पर कसे या तपाए सोने के अच्छे होने का विश्वास क्यों कर हो सकता है ? अब क्या इरादा है ?

युवराज—वही जो पहले निश्चित हो चुका है।

महाराज—जाति-पाँति का बन्ध तोड़ दिया जाय।

म० विश्वानन्द—महराज जाति-पाँति का बन्धन आप तोड़िये या न तोड़िये, पर इतना कहूँगा कि अछूतों की परीक्षा हो चुकी। आप लोगों को नहीं मालुम कि स्वयं हरिकरण उपाध्याय एक अछूत बालक हैं, जिन्हें श्रीमान् गोकरण उपाध्याय ने उच्च जाति का समझ कर गोद में लिया था। उनका सेवाव्रत इस राज्य में प्रसिद्ध ही है।

महाराज—[आश्चर्य दिखला कर] अच्छा! वे अछूत बालक हैं!

म० विश्वानन्द—जी हां महाराज—इतना ही नहीं, महन्त सदानन्द जी भी एक अछूत बालक हैं। उनके अछूत होने का भेद न जान कर, गुणों के कारण पंचों ने उन्हें महन्त-पद पर आसीन किया है। यह सिद्ध हो चुका है कि वे धर्माध्यक्ष का कार्य ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक योग्यता से कर सकते हैं।

[ महाराज और सब लोग चकित होते हैं ]

म० विश्वानन्द—महाराज, इतनाही नहीं, जिस सुशीला ने अपने को रमणी कुल का गौरव और सती-पद के योग्य सिद्ध किया है वह भी एक अछूत की लड़की है। श्रीमान् हरिकरण उपाध्याय की पत्नी ने वध्यापन के दोष से बचने के लिए और सन्तान की इच्छा से एक बालिका मंगाई थी और उदर पीड़ा का बहाना कर के यह प्रसिद्ध किया था कि मेरे यह लड़की पैदा हुई है।

महाराज—आश्चर्य ! आश्चर्य !!

म० वि०—और न्यायाधीश के पद पर आसीन होकर अछूत किस योग्यता से काम कर सकता है यह तो दयासागर ने आपको दिखला ही दिया है।

सब लोग--बिलकुल ठीक बात है।

म० वि०—अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए।

महाराज—अब विवाद और सोचने की आवश्यकता ही नहीं रह गई।

[ सुशीला से ] बेटी इधर आओ। [ दयासागर से ] वत्स तुम भी इधर आओ।

[ सुशीला का हाथ दयासागर के हाथ में देते हैं ]

[ सब लोगों से ] भाइयो। आशीर्वाद दो कि जोड़ी बनी रहे।

सब—जोडी बनी रहे—

म० विश्वानन्द—[ गाते हैं ]

जगत में, सब जन सदा समान,
मैं हूँ बडा, और वह छोटा, यह झूठा अभिमान,
एक पिता के सभी सुवन हैं,
भाई भाई सारे जन हैं,
झूठे जाति-पाँति बन्धन हैं— यह है सच्चा ज्ञान,
सब को सम समझे था मन में,
खेला था जो ग्वाला जन में,
वही बसा है सब के तन में—रक्खो उसका मान !

